भारत और बंगला देश में चीनी षड्यंत्र

लेखक

शशि भूषण
संसद सदस्य

प्रकाशक
समाजवादी शिक्षा प्रकाशन
नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण
फरवरी १९७३

वितरक :
हिन्दी बुक सेण्टर
४/५ आसफ अली रोड,
नयी दिल्ली-१

मूल्य : चार रुपया पचास पैसे

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-२८

भूमिका

आज बंगलादेश का उदय एक ऐसी वास्तविकता है जो किसी की मान्यता के लिए परमुखापेक्षी नहीं है। ये ही शब्द मैंने श्रीमती इन्दिरा-गांधी जी को कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन १६७१ में कहे थे कि "बंगलादेश एक वास्तविकता है चाहे संयुक्त राष्ट्रसंघ इसको मान्यता दे या न दे; और चाहे भारत भी इस सत्य को स्वीकार करे या न करे।"

वहां ऐसी प्रभावशाली सरकार काम कर रही है जिसे पिछले चुनावों में १६६ में से १६७ स्थान मिले थे, जिसने पाकिस्तानी सैनिक ताना-शाहों, अमरीकी साम्राज्यवादियों और चीनी विस्तारवादियों के हमलों तथा षड्यन्त्रों का मुंहतोड़ जवाब दिया था। अपने जन्म के पहले ही साल में उसने अपना संविधान तैयार कर लिया है और इस मार्च में जातीय संसद के पहले आम चुनाव कराये जा रहे हैं। यह उनके आत्म-विश्वास और देश पर कड़े नियन्त्रण का सबूत है। परन्तु कुछ ताकतें इस कठोर वास्तविकता को नहीं मानतीं। यह वास्तविकता का नहीं उनके दृष्टिकोण का ही दोष है।

भारतीय गणतन्त्र की शानदार जनतांत्रिक परम्परायें हैं। हम लोग अपने संकुचित स्वार्थ में फंस कर प्रतिशोध की भावना से कभी कोई काम नहीं करते। पिछले २३ वर्षों से भारत ने चीनी गणतन्त्र के संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश के लिए निरन्तर संघर्ष किया था। परन्तु अमरीकी साम्राज्यवादियों ने अपने डालर प्रभावित देशों के साथ मिल कर सदा ही संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन के प्रवेश पर रोक लगाई। अमरीका जन-मत के भय से कभी सुरक्षा परिषद में इसके खिलाफ निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कर सका। परन्तु यह कैसी विडम्बना है कि आज उसी अमरीका से सांठ-गांठ करके चीनी नेता सुरक्षा परिषद में बंगलादेश के खिलाफ निषेधाधिकार का प्रयोग करते हैं। अभी तीन महीने तक संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में काम करते हुए मुझे

जो अनुभव हुआ, वह बहुत दुःखद है। चीनी नेताओं का इस सवाल पर रुख बहुत दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। वे धमकी देते हैं कि दुबारा और तिबारा भी चीन निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है।

मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे चीनी नेताओं का सिद्धान्त, वास्तविकता, मानवता और समाजवाद से कोई भी सम्बन्ध नहीं रह गया है। सत्ता का प्रदर्शन और अवसरवाद ही अब उनकी राजनीति है।

भारत ने अपने सभी पड़ोसियों तथा विशेष रूप से पाकिस्तान के प्रति शान्ति एवं सद्भावना के सम्बन्ध कायम करने का प्रयास किया है। ब्रिटेन ने पाकिस्तान को जन्म दिया, अमरीका ने उसे भारत के खिलाफ पाल-पोस कर खड़ा किया और अब चीनी नेता उसमें भारत के खिलाफ फूंक भरते रहते हैं।

चीनियों ने विशेष उत्तेजना फैला कर एक करोड़ शरणार्थियों को बंगलादेश से उखड़ कर भारत आने के लिए मजबूर किया था और बंगालियों के खिलाफ दमनचक्र चलवा कर उकसावा पैदा किया था। चीनी नेताओं ने पूरे एशिया और संसार का वातावरण दूषित कर रखा है।

श्री शशि भूषण, संसद सदस्य, ने इस पुस्तक में जिस गम्भीरता के साथ चीनी नेताओं के कार्य-कलाप की विवेचना की है, यह रोंगटे खड़े करने वाली है। श्री शशि भूषण की यह पुस्तक चीन के किसी दुश्मन की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही नहीं बल्कि चीनी जनता के एक सच्चे शुभचिंतक की दुःखद आलोचना है।

यह पुस्तक लिख कर उन्होंने पूरे संसार के प्रगतिशील आन्दोलन में एक बहुत बड़ा योग प्रदान किया है।

२०, विंडसर प्लेस,
नयी दिल्ली।
७ फरवरी, १९७३

बुद्धप्रिय मौर्य
संसद सदस्य (लोक सभा)

अध्याय एक

बंगलादेश और चीनी नेता

आज न केवल बंगलादेश और भारतवर्ष में बल्कि संसार के एक बहुत बड़े भाग में चीनी षड्यन्त्रकारी 'मकड़े' की तरह जाल पूरते फिरते हैं। विश्व के स्वाधीनता आन्दोलनों तथा समाजवादी एकता में दरार डालना, प्रगतिशील राष्ट्रवादी नेताओं के सामने संकट पैदा करना और उनकी सत्ता उलटना ही चीनी नेताओं की कार्यनीति का मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए वे कहीं ब्रिटिश जासूसों से गले मिलते हैं, तो कहीं सामन्ती प्रतिक्रियावादियों और सैनिक तानाशाहों से दोस्ती करते हैं। आजकल कुख्यात अमरीकी जासूसी संस्था सी० आई० ए० इन कामों में उनकी विशेष सहयोगी है।

चीनी नेता दुनिया के प्रगतिशील आन्दोलन में तोड़फोड़ करने के लिये यद्यपि मुक्ति आन्दोलन और लेनिनवाद के गर्मा-गर्म नारे लगाते हैं, परन्तु अमरीकी साम्राज्यवादियों की भांति, चीनी "मकड़े के जाल" का आधार भी दुनिया के घिसे-पिटे मोहरे और प्रतिक्रियावादी लोग ही हैं। पाकिस्तान में पहले अयूब खां, उनकी नौका डूबने पर याहिया खां और अब जनाब भुट्टो उनकी साजिशों के केन्द्र हैं। लेकिन भुट्टो साहब अभी उखड़ने भी नहीं पाये हैं कि उन्होंने टिक्का खां और मौदूदी पर डोरे डालने शुरू कर दिये हैं।

बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन के विरोध में चीनी नेताओं ने जिस

ढंग के षड्यन्त्र किये, याहियाशाही को बंगाली देशभक्तों के कत्लेआम के लिए उकसाया तथा अमरीकी साम्राज्यवादियों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर बंगलादेश को खून में डुबो दिया उससे यह सिद्ध होता है कि दुनिया का प्रत्येक प्रगतिशील मुक्ति आन्दोलन उनके क्रोध और घृणा का शिकार हो जाता है।

अब यह बात भी साफ जाहिर हो गयी है कि पूर्वी पाकिस्तान के करोड़ों निर्दोष लोगों पर अमानुषिक अत्याचार किसने ढाये थे ? बंगलादेश के एक करोड़ लोगों को किसने बेघरबार किया और किसने इन बेबुलाये मेहमानों के अतिथि-सत्कार के लिये हम भारतीयों को कठिन अग्नि परीक्षा में डाला ? बंगलादेश में करीब ३० लाख आदमी कत्लेआम के शिकार हुए और ३०,००० बंगाली बुद्धिजीवी मार डाले गये। उनकी ये सूचियां किसने बनाई थीं ? अब यह भी स्पष्ट हो चुका है कि नर-संहार की यह योजना अमरीकी सी० आई० ए० तथा चीनी गुप्तचर विभाग ने मिलकर बनाई थी।

पिछले २५ वर्षों से बरतानिया और अमरीका ऐड़ी से चोटी तक पाकिस्तान को खतरनाक हथियारों से लादते रहे और जब कभी भी हमारे राष्ट्रनायक पं० नेहरू ने इस घृणित साम्राज्यवादी षड्यन्त्र का विरोध किया तो उसका एक ही रटा-रटाया जवाब दिया जाता रहा :

"यह हिन्दुस्तान के खिलाफ नहीं है। यह साम्यवादी विश्व व्यवस्था का विस्तार रोकने के लिए किया जा रहा है।"

परन्तु हम भारतीयों को पहले भी और अभी भी पूरी तरह से यह भरोसा है कि यह सब भारत की स्वाधीनता और स्वतन्त्र विदेश नीति के ऊपर हमला था और है। हमें अचम्भा तब हुआ जब चीनी नेता भी साम्राज्यवादियों के साथ मिल कर पाकिस्तानी सैनिक तानाशाहों को हथियारों से लैस करने लगे। तब हमें यह समझने में देर नहीं लगी कि चीनी नेता ही, अब विश्व साम्यवादी व्यवस्था के अंग नहीं रहे हैं और वे

साम्राज्यवाद से मिल कर साम्यवादी आन्दोलन को नष्ट करना चाहते हैं—यही उनका मकसद है।

बंगलादेश में कत्लेआम की राजनीतिक पृष्ठभूमि वास्तव में चीनी नेताओं की ओर से ही आरम्भ की गई थी। पाकिस्तान में आम चुनावों के बाद याहिया खां चीन गये। चीनी नेताओं के साथ उनकी बहुत लम्बी राजनीतिक चर्चाएं चलीं। याहिया खां पाकिस्तान की रक्षा के लिए शेख मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तान का प्रधानमन्त्री बनाना चाहते थे। चुनावों के तुरन्त बाद उन्होंने इस बात की स्पष्ट घोषणा भी की। परन्तु चीनी नेताओं को याहिया खां का यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। माओ त्से-तुंग एशिया पर अपनी नेतागीरी के मन्सूबे थोपने के लिए पाकिस्तान को एक विशेष हथियार के रूप में इस्तेमाल करते रहे हैं। परन्तु उन्हें वही पाकिस्तान पसन्द था जो जनता का न होकर सैनिक तानाशाहों का हो और जो एशिया में तनाव पैदा करने के काम में साधन बनाया जा सके। इसीलिए चीनी नेताओं ने पाकिस्तानी सैनिक तानाशाहों को करोड़ों रुपये के हथियार और दमन के दूसरे साधन दिये।

चीनी नेताओं की दृष्टि में शेख मुजीबुर्रहमान और बंगलादेश की जनता का मुक्ति आन्दोलन, जो आत्मनिर्णय के अधिकार को लेकर चलाया गया था, एक विघटनकारी आन्दोलन था। उनकी दृष्टि में शेख मुजीबुर्रहमान और उनके अनुयायी केवल 'बागी' और 'असन्तुष्ट' लोग थे, जिन्हें दबा देने से पाकिस्तान की 'अराजकता' हटायी जा सकती है और उसकी अखण्डता बचाई जा सकती है। इसलिए चीनी नेताओं ने याहिया खां पर दबाव डाला कि शेख मुजीबुर्रहमान की मुनासिब जगह प्रधानमन्त्री की कुर्सी नहीं बल्कि पाकिस्तानी जेल है।

आज के पाकिस्तानी राष्ट्रपति श्री जुल्फिकार अली भुट्टो पाकिस्तान के विघटन के बारे में चाहे जितने घड़ियाली आंसू बहावें, परन्तु यह बात सभी को याद है कि पाकिस्तान के विघटन में उनका सबसे

बड़ा हाथ था। याहिया खां पर दबाव डालने के लिए भुट्टो ही उस समय चीनी नेताओं के सबसे प्रभावशाली साधन के रूप में काम कर रहे थे। इसीलिए शेख मुजीबुर्रहमान को प्रधानमन्त्री वनाने के बजाय याहिया-शाही ने बन्दी बना दिया।

परन्तु शेख मुजीबुर्रहमान करोड़ों बंगालियों के लिए जातीय मुक्ति के सन्देशवाहक वन चुके थे। वह बंगलादेश के राष्ट्रपिता थे और उन्हें जेल में डालना साढ़े सात करोड़ बंगालियों की भावनाओं का दमन करना था। इस गिरफ्तारी ने पूरे बंगलादेश में आग लगा दी। जगह-जगह विद्रोह की पताकायें फहराई जाने लगीं और ऐसा अनुभव होता था जैसे पूरे बंगलादेश में आग भड़क चुकी है। याहियाशाही सूखे पत्ते की तरह बंगाली ज्वार-भाटे के ऊपर इधर से उधर छितराने लगी और तभी वह समय आया जब बंगालियों को बगावत का मजा चखाने के लिए बड़ी तादाद में पश्चिमी पाकिस्तान से फौजी टुकड़ियां रवाना की गईं। हम भारतीयों को जब बाद में यह पता चला कि इन सैनिक टुक-ड़ियों को चीनी अधिकारियों ने दमन तथा यातना देने की विशेष दीक्षा दी है तो घृणा से हमारे दिल भर उठे। लेनिन के पवित्र नाम की माला जपने वाले ये चीनी ऐसे क्रूर कृत्य की शिक्षा भी दे सकते हैं यह किसी को विश्वास नहीं था।

पिछले १५-१६ वर्षों से पाकिस्तानी सेनाएं चीनी निर्देशकों के प्रशि-क्षण में रही हैं। भारत के साथ मुठभेड़ों के समय तक उनकी संख्या काफी बड़ी हो चुकी थी। पाकिस्तानी सेना के काफी अफसरों ने चीनी सैनिक स्कूलों में शिक्षा ली है। पाकिस्तानी सेना के अनेक डिवीजन ऐसे हैं जिनके पास केवल चीन-निर्मित हथियार थे। जिस समय बंगालियों पर दमन-चक्र के लिए पाकिस्तानी सैनिक टुकड़ियां बंगलादेश आनी शुरू हुई थीं उससे बहुत पहले ही चीनी टैंक, विमान भेदी तोपें और दूसरे चीनी शस्त्रास्त्र पाकिस्तान में आने शुरू हो चुके थे। इसी बीच पूर्वी बंगाल में

बड़ी तेजी के साथ एक बड़ा चीनी शस्त्रागार इकट्ठा किया जा चुका था ताकि जरूरत पड़ने पर पश्चिमी पाकिस्तान की सैनिक टुकड़ियों को हथियारबन्द किया जा सके और बंगालियों पर जुल्म ढाए जा सकें। बंगलादेश में मुक्ति आन्दोलन का अभियान जब शिखर पर था तब ढाका में चीनियों ने बहुत बड़ी मात्रा में खतरनाक शस्त्रास्त्र भेजे थे। अमरीकी साम्राज्यवादी जो हथियार भेजते थे उनका मकसद तो "विश्व साम्यवादी व्यवस्था से लड़ना" होता था, परन्तु ये 'लेनिनवादी' किससे लड़ने के लिए हथियार भेज रहे थे ? वे एक ओर तो राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की जबानी पैरवी कर रहे थे और दूसरी ओर बंगलादेश में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को खून में डुबो रहे थे।

परन्तु सैनिक सत्ताधारियों का जमाना लद चुका है। वे नौकायें डूब चुकी हैं जिन पर सवार होकर साम्राज्यवादी और विस्तारवादी क्रान्तियों को विफल करने के लिए अभियान चलाया करते थे। बहुत जल्दी ही बंगाली देशभक्तों ने पाकिस्तानी सिपाहियों के परखचे उड़ाने शुरू कर दिये और दूसरी ओर भारतीय सैनिकों ने पाकिस्तानी दरिन्दों का संहार करना शुरू कर दिया। उस समय चीनी नेताशाही के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं। उन्होंने अपने व्यापारिक जहाजों के जरिये पाकिस्तानी दस्युओं को बचाकर निकालने की कोशिश की। परन्तु उनकी कोशिशों से पहले ही चिड़िया खेत चुग चुकी थी। भारतीय सेना और मुक्तिवाहिनी के सामने पाकिस्तानी दरिन्दों ने हथियार डाल दिये थे और वे बन्दी बनाये जा चुके थे।

बंगलादेश के प्रधानमन्त्री शेख मुजीबुर्रहमान ने कहा था :

"पाकिस्तानी सैनिकों के पास से पकड़े गये तमाम शस्त्रों में ६० प्रतिशत चीनी और ४० प्रतिशत अमरीकी थे।"

क्या चीनी नेता इस घृणित रक्तपात के लिए जिम्मेदार नहीं हैं ? चीनी नेता खुद इतने बड़े मूर्ख हैं कि वे उन क्रान्तिकारी नारों का अर्थ

नहीं समझते जिन्हें वे रात-दिन लगाते हैं और समाजवाद की विजय तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की मौखिक नारेबाजी करते हैं तथा साथ ही निर्दोष बंगालियों के खून की नदियां बहाने वाले पाकिस्तानी तानाशाहों की बगल में खड़े हुए अमरीकी साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर बंगलादेश तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ में उस नरसंहार का समर्थन कर रहे थे।

और या फिर वे पूरे संसार के बुद्धिजीवियों को इतना मूर्ख समझते हैं कि वे जिस सांस में क्रांतिकारी नारे लगाते हैं उसी सांस में उनके हाथ की तलवारें क्रान्तिकारी ताकतों के सिर काटती हैं और उनमें फूट के बीज बोती हैं। चीनी नेता यह आशा करते हैं कि ऐसा करके और क्रान्ति के पक्ष में घड़ियाली आंसू बहाकर वे दुनिया को बेवकूफ बना सकते हैं।

चीनी नेताओं की इन करतूतों पर वे लोग भी हैरान रह गये जो इस रक्तपात के लिए खुद ही जिम्मेदार थे। अमरीकी साम्राज्यवादियों और पाकिस्तानी सैनिक तानाशाहों को यह देखकर अचम्भा हुआ कि चीनी नेता उनके पाप भरे कदमों का इतनी दूर तक जाकर समर्थन करते हैं जिसकी उन्हें आशा नहीं थी।

परन्तु जो लोग चीनी नेताओं के सैद्धान्तिक बहुरुपियेपन और अवसरवाद से परिचित हैं उन्हें चीनियों की इस हरकत पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। लेनिनवाद के नाम पर चीन में जिस सामन्ती मनोवृत्ति, विचारधारा और त्रात्सकीवाद तथा निम्न पूंजीवादी दृष्टि-कोण का प्रचार किया जाता रहा है उसके लिए ऐसी करतूतों में शामिल होना विजातीय बात नहीं हो सकती। विपरीत इसके, उसका यह स्वाभाविक परिणाम है।

क्या चीनी नेता यह नहीं जानते थे कि पाकिस्तान में सामन्त-वादियों, सैनिक तानाशाहों व उन प्रतिक्रिया व पूंजीवादियों का शासन

है जो साम्राज्यवाद की दलाली करते हैं, जिन्होंने 'सीएटो' और 'सेन्टो' सैनिक संधियों के सदस्य बनकर अपने यहां साम्राज्यवादियों को सैनिक अड्डे बनाने की जगह दे रखी है। साम्राज्यवादी इन अड्डों से उड़-उड़कर समाजवादी शिविर के आकाश में जासूसी करते हैं, मुक्ति आन्दोलनों के खिलाफ तोड़-फोड़ करते हैं और पाकिस्तान को एशिया में साम्राज्यवाद के घृणित अड्डे के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। विपरीत इसके, हिन्दुस्तान समाजवादी शिविर का घनिष्ठतम मित्र है, पूरे संसार में साम्राज्यविरोधी मुक्ति आन्दोलनों का समर्थक है और उसने एक तिहाई से भी ज्यादा दुनिया को गुटनिरपेक्ष नीति का एक ऐसा सैद्धान्तिक हथियार दिया है जिसके आधार पर उसने दुनिया के करोड़ों लोगों को प्रगतिशील रास्ते पर आगे बढ़ाया है।

किन्तु पेकिंग के ये नकली क्रान्तिकारी हिन्दुस्तान को दुश्मन मानते हैं और पाकिस्तानी तानाशाह उनके जिगरी दोस्त हैं।

शेख विरोधी ताकतें

बंगलादेश की मुक्ति के बाद शेख मुजीबुर्रहमान और उनके साथियों के हाथों में जब सत्ता आई तो पूरा बंगलादेश विनाश और निराशा के कगार पर खड़ा हुआ था। अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न थी, संगठन टूटे हुए थे, शिक्षा संस्थायें सुनसान पड़ी हुई थीं, खेत वीरान थे और कार-खानों में हलचल खत्म हो चुकी थी।

देश के बुद्धिजीवियों का या तो पाकिस्तानियों ने कत्ल कर दिया था या वे लापता थे। प्रशासनिक ढांचा टूटा हुआ था। खजाने खाली पड़े हुए थे और बंगला देश की हालत इतनी शोचनीय थी, जैसे भारी भूकम्प के बाद किसी उजड़े हुए और वीरान नगर की होती है।

शेख मुजीबुर्रहमान उनके बीच खड़े थे, उनके चारों ओर बंगाली देशभक्तों ने साहस करके फिर से कमर बांधी, बंगलादेश के नव-

निर्माण का भगीरथ संकल्प किया और अपने आपत्तिकालीन बन्धु, भारत की ओर देखा। साम्राज्यवादियों के हमलों में हम भारतीयों का खून बंगालियों के साथ मिल कर बहा था। वह खून हमें पुकार रहा था कि बंगलादेश के देशभक्तों के साथ खड़े हो जाओ। हमारी प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने करोड़ों भारतीयों की मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए शेख मुजीबुर्रहमान को आश्वासन दिया :

"हिन्दुस्तान आपके साथ है।" यह साथ कल बंगलादेश के मुक्ति संग्राम में भी था और आगे चलकर राष्ट्र के पुनर्निर्माण के काम में भी कायम है।

विरोधी प्रचार

उस समय ये चीनी नेता क्या प्रचार कर रहे थे ? हिन्दुस्तान विस्तारवादी है। उसने पाकिस्तान तोड़ डाला है। भारतीय फौजों ने बंगलादेश पर कब्जा कर लिया है, शेख मुजीबुर्रहमान हिन्दुस्तान के दलाल हैं, इत्यादि।

हमारी एक पुरानी कहावत है "बड़े मियां सो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह !" अर्थात् चीनी नेता जिस प्रकार का घृणित प्रचार करते थे उससे भी अधिक घृणित प्रचार चीनी नेताओं के गुर्गों ने बंगलादेश और हिन्दुस्तान में करना शुरू कर दिया।

उदाहरण के लिए जब कलकत्ता की सड़कों पर लाखों-लाख बंगला देश के शरणार्थी काफिले बनाकर घूम रहे थे, याहियाशाही के नरसंहार का रूप निखर कर सामने आ रहा था और लोग हमारी प्रधानमन्त्री से यह शिकायत कर रहे थे कि "मानवता के सम्मान" की रक्षा के लिए वह भारत सरकार की पूरी शक्ति दांव पर लगा कर बंगलादेश की मुक्ति के लिए काम करें, उस समय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी कलकत्ता की सड़कों पर कौन से नारे लगा रही थी ? उसके नारे थे :

१—"इन्दिरा-याहिया एक हैं!"

२—"शेख मुजीबुर्रहमान अमरीकी साम्राज्यवाद का दलाल है!" आदि।

इन तथाकथित मार्क्सवादियों की आंखों पर चीन निर्मित काला चश्मा चढ़ा हुआ था। वे यह देखने में असमर्थ थे कि अमरीकी साम्राज्य-वाद की दलाल याहियाशाही है न कि शेख मुजीबुर्रहमान। और याहिया-शाही बंगला देश को कत्लेआम का शिकार बना रही है तथा इन्दिरा गांधी बंगाली देशभक्तों के कन्धे-से-कन्धा मिला कर उनकी मुक्ति के लिए रक्त बहा रही हैं।

परन्तु इन तथाकथित मार्क्सवादियों को वास्तविकता से क्या लेना-देना था। इन्हें तो वही राग अलापना था जिसकी धुन पेकिंग रेडियो बजा देता था, परन्तु जागरूक भारतीय जनता ने इन तथाकथित मार्क्स-वादियों की वही हालत कर दी जिसके वे अधिकारी थे। बंगलादेश की मुक्ति के तुरन्त बाद जब पश्चिमी बंगाल में विधानसभा के चुनाव हुए तो जनता ने उन्हें मुनासिब सबक सिखा दिया।

इसी तरह बंगलादेश में मौलाना भाशानी बहुत पुराने जमाने के एक प्रतिष्ठित देशभक्त माने जाते रहे हैं। एक जमाना था कि संयुक्त हिन्दुस्तान में और बाद में पूर्वी पाकिस्तान में वे एक क्रान्तिकारी किसान नेता के रूप में आदर पाते रहे हैं। लोग "उन्हें लाल मौलाना" भी कहते रहे हैं। परन्तु अपने जीवन की सान्ध्य-बेला में चीनी नेताओं की काली परछाईं पाकर वे अपना अस्तित्व खराब कर बैठे हैं और उनकी सनकों को सुनकर लोग अफसोस के साथ यह कहने लगे हैं कि मौलाना बदल गये हैं और राष्ट्रहित भूल गये हैं।

पहले तो मौलाना ने अपनी "क्रान्तिकारिता" का परिचय देते हुए आम चुनावों का बहिष्कार कर दिया, जब कि आगे चलकर इतिहास ने यह साबित कर दिया कि वे चुनाव याहियाशाही की कब्र खोदने

का प्रभावशाली माध्यम बने। इसके बाद, याहियाशाही के दमनचक्र में मौलाना चीनियों के संकेत पर शेख मुजीबुर्रहमान का विरोध करते रहे और याहियाशाही के नरसंहार पर मौन साधे रहे। मौलाना की समझ में यह बात नहीं आई कि यह समय शेख मुजीबुर्रहमान से अपनी पुरानी रंजिशें निकालने का नहीं है। शेख मुजीबुर्रहमान साम्राज्यवादियों की घृणित साजिशों और याहियाशाही के अमानवीय नरसंहार का सामना कर रहे थे। मौलाना यह बात भी भूल गये कि अपनी इन्हीं बलिदानी परम्पराओं के कारण शेख मुजीबुर्रहमान रातों-रात लोकप्रियता के ऊंचे शिखर पर पहुंच कर आठ करोड़ बंगालियों के लिए बंग-बन्धु बन गये हैं और उनका अप्रत्यक्ष विरोध करना भी मौलाना के राजनीतिक भविष्य का अन्त कर सकता है।

मौलाना जल्दी ही यह समझ गये हैं कि शेख मुजीबुर्रहमान की मुखालफत करना पूरे बंगलादेश की जनता की घृणा और क्रोध का शिकार होना है। यह परिस्थिति सामने आते ही मौलाना चुपके से संघर्षरत बंगलादेश से हिन्दुस्तान खिसक आये। वे कभी-कभी अखबारों में यह वक्तव्य तो देते रहे कि चीनी नेताओं को बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन का विरोध नहीं करना चाहिए।

जैसे हिन्दुस्तान आने पर उन्होंने एक बार आकाशवाणी के उर्दू कार्यक्रम के लिए अपनी भेंटवार्त्ता में निरीह जनता पर याहियाशाही के जुल्मों की निन्दा भी की और इस बात पर आश्चर्य भी प्रकट किया कि हमले से नफरत करने वाली चीन सरकार पता नहीं क्यों अब तक चुप्पी साधे बैठी है। इस मुलाकात में उन्होंने कहा कि वह इस सम्बन्ध में एक पत्र माओ त्से-तुंग और एक चाऊ एन लाई को लिख चुके हैं और उनसे अनुरोध किया है कि वे बंगलादेश की शोषित जनता के पक्ष में तुरन्त अपना बयान जारी करें। उन्होंने बंगलादेश की सरकार को मान्यता प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा

भारत सरकार का शुक्रिया अदा किया।

बयान में ९० वर्षीय वयोवृद्ध नेता मौलाना भाशानी ने याहिया सरकार की निन्दा करते हुए कहा कि वह अभी तक १० लाख वेकसूर स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों को मौत के घाट उतार चुकी है। पश्चिमी पाकिस्तान के भ्रष्ट जागीरदारों और पूंजीपतियों ने पिछले २४ सालों में बंगलादेश की साढ़े सात करोड़ जनता का खूब खून चूसा हैं। इन लोगों ने बंगालियों को मानव अधिकारों से वंचित कर रखा है। इस्लाम धर्म ने इन्सान को यह जिम्मेदारी सौंपी थी कि वह शोषण के खिलाफ लड़े। जेहाद भी अल्लाहताला के दुश्मनों का सफाया करने के लिए ही होना चाहिए। लेकिन इस्लाम के नाम पर पूर्वी बंगाल के भोले-भाले गरीब इन्सानों—हिन्दुओं, मुसलमानों और बौद्धों पर मनचाहे जुल्म ढाये गये हैं। याहियाशाही ने बंगलादेश में जो अत्याचार किये हैं, उनके आगे पुराने ज़माने में करबला में "यज़ीद" और नये ज़माने में हिटलर और मुसोलिनी के अपराध भी फीके पड़ जाते हैं।

अंत में मौलाना ने यहाँ तक कहा कि याहियाशाही "समाजवाद, साम्यवाद और मानवतावाद" सभी प्रकार के आदर्शों के खिलाफ है। और इसलिए उन्होंने चीनी नेताओं से यह माँग की कि वे खुलेआम यह घोषणा करें कि "दुनिया के कम्युनिस्ट इस हमले के खिलाफ हैं और चीनी नेता हमलावर का समर्थन नहीं करते।"

(इण्डियन एक्सप्रेस, ६ दिस० १९७१)

[चीनी नेताओं के नाम भाशानी साहब की आर्त्त-पुकार का उत्तर तथा अन्य सम्बन्धित मामले परिशिष्ट में देखिए]

लेकिन मौलाना भाशानी यह स्पष्ट घोषणा करने का साहस कभी नहीं बटोर पाये कि मुक्ति आन्दोलन का विरोध करके और याहियाशाही का साथ देकर चीनी नेता क्रान्ति के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। विपरीत इसके, मौलाना चीनी नेताओं की लल्लो-चप्पो कर रहे

थे। एक बार अखबारों में यह समाचार भी आया था कि "मौलाना भाशानी चीनी नेताओं को समझाने के लिए पेकिंग जाने वाले हैं।" परन्तु उन्हें इस बात का अनुभव पहले ही हो चुका था कि चीनी नेता किसी नासमझी के कारण मुक्ति आन्दोलन का विरोध नहीं कर रहे बल्कि सोच-समझ कर ऐसा कर रहे हैं।

हिन्दुस्तान में बीमार होकर मौलाना हम भारतीयों के मेहमान रहे और उन दिनों अक्सर वे हमारी मेहमानवाजी की प्रशंसा किया करते थे। परन्तु स्वतन्त्र बंगलादेश की सरकार की घोषणा के उपरान्त वह यहां से चले गये और अपने ही आप उन्होंने अपने आपको गांव में नजरबन्द कर लिया। सूफियाना ढंग से उन दिनों वे चुप रहा करते थे और बंगलादेश की जनता पर यह मनोभाव प्रकट करते थे, जैसे कि मौलाना को उन परिस्थितियों से भुगतना नहीं है जो बंगलादेश के सामने थीं और वे निरपेक्ष भाव से, परन्तु योजना के साथ मौन साधे हुए थे। इस बीच में चीनियों के साथ उनका सम्पर्क हुआ, उन्हें नई राजनीतिक "लाइन" मिल गई। और तब से आज तक मौलाना हमारे आतिथ्य का तिरष्कार करके कभी तो हम भारतीयों को विस्तारवादी और प्रतिक्रियावादी कहते हैं, कभी हमारी आदरणीय प्रधानमन्त्री के ऊपर आरोप लगाते हैं, बंगला देश के राष्ट्रवादी नेताओं को भारत सरकार का दलाल कहकर बंगलादेश की साढ़े सात करोड़ जनता का तिरष्कार करते हैं।

हम भारतवासी आज भी मौलाना का आदर करते हैं। वे हमारी उस पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जिस पीढ़ी ने राष्ट्र की मुक्ति के लिए साम्राज्यवादियों के खिलाफ कठोर संघर्ष किया था। परन्तु हम उनसे केवल एक ही प्रश्न पूछना चाहते हैं :

"वह हमें यह तो बतावें कि हम भारतीयों का कसूर क्या है?" क्या बंगाली देशभक्तों में और हम भारतीयों की नसों में एक ही पुरखों का

खून नहीं दौड़ता है ? क्या हम एक ही सभ्यता और परम्परा के प्रतिनिधि नहीं हैं ? जब याहियाशाही बंगाली भाइयों पर जुल्म ढा रही थी, क्या तब अपने भाइयों के साथ अपना खून बहाना हमारा कर्त्तव्य नहीं था ? और जब अमरीकी साम्राज्यवादी तथा चीनी नेता बंगला देश को विशाल खंडहर बनाकर बंगालियों को अपने सामने आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर करना चाहते थे तब हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार यदि अपने भाइयों की सहायता के लिए पहुंचे तो क्या यह हमारे विस्तारवाद की निशानी है ?"

जो लोग शेख मुजीबुर्रहमान की एक विशाल और प्रभावशाली जनान्दोलन करने की क्षमताओं की उपेक्षा करते हैं और उन्हें केवल इन्दिरा गांधी का समर्थक समझते हैं दरअसल वे वही राग अलापते हैं जो चीनी नेताओं ने और साम्राज्यवादियों ने अलापना शुरू किया था।

एक साथ दो घोड़ों पर सवारी

चीनी नेता एक साथ दो घोड़ों पर राजनीतिक सवारी कर सकते हैं। उनके सामने न कोई नीति है और न कोई आदर्श। वे प्रगतिशील ताकतों का विरोध करने के लिए एक प्रतिक्रियावादी ताकत का साथ देते हैं। परन्तु उन्हें भरोसा उस प्रतिक्रियावादी ताकत पर भी नहीं रहता। जिस क्षण वे उसका साथ देते हैं उसी क्षण उसकी जड़ खोदने वाली दूसरी ताकत का साथ देते रहते हैं और इस तरह तोड़फोड़ करना उनकी नीति का एक मौलिक पक्ष बन गया है। अन्त में वे ऐसे गुर्गों की तलाश करते हैं जो पूर्ण रूप से उन्हीं पर आश्रित हों और उनकी मनमौजी तरंगों पर नाच सकें।

सबसे पहले उन्होंने पाकिस्तान में अयूबशाही का दामन पकड़ा था। पर अयूब खां का साथ देते-देते उन्होंने याहिया खां को पकड़ा व उसका समर्थन किया। याहियाशाही का समर्थन करते-करते चीनी नेताओं ने

उसके विरोधी और महत्वाकांक्षी जनाब भुट्टो को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया। श्री भुट्टो राजनीतिक कलाबाजी खाने व गर्म-गर्म लफ्फाजी इस्तेमाल करने में चीनियों के भी कान काटते हैं। परन्तु ज्यों ही श्री भुट्टो सत्ता में आये, तो उसके साथ ही वे टिक्का खां और जमाइते इस्लामी के नेता मौलाना मौदूदी तथा दूसरे प्रतिक्रियावादियों को श्री भुट्टो के खिलाफ पाल-पोसकर तैयार कर रहे हैं। इस प्रकार वे किसी के भी दोस्त नहीं हैं और जो कोई भी उनकी हिदायतों पर चलता है, अपने देश और समाज की राजनीति में वह अपना प्रभाव खो बैठता है।

आज तक का इतिहास यह साबित करता है कि चीनी नेता जिसके दोस्त हो जाते हैं उसे दुश्मन की आवश्यकता नहीं रहती। अयूब खां, याहिया खां, और अब श्री भुट्टो तेजी से अपने दोनों पूर्वगामियों के रास्ते पर चलते हुए यह साबित कर रहे हैं कि चीनी नेताओं का दोस्त दुनिया में कभी फलता-फूलता नहीं है।

राजनीतिक क्षेत्र में इन्डोनेशिया की कम्युनिस्ट पार्टी चीनी नेताओं की राह पर चली। वह कत्लेआम की शिकार हुई। हिन्दुस्तान में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने माओ त्से-तुंग का झण्डा हाथ में उठाया और पूरे हिन्दुस्तान में उनका सफाया हो गया—बंगाल तथा केरल में वे बड़ी मुश्किल से केवल बहुत थोड़े से क्षेत्रों में अपना प्रभाव बचा पा रहे हैं। हिन्दुस्तान के नक्सलवादी आन्दोलन ने माओ त्से-तुंग के रास्ते पर चलने का फैसला किया और यह आन्दोलन कुछ आत्मघाती जत्थे पैदा करके अब विस्मृति के गहरे गढ़े में जा पड़ा है। यदि बंगलादेश के मौलाना भाशानी इस इतिहास से कुछ सबक ले सकें तथा चीनी नेताओं के उकसावे में आने के बजाय शेख मुजीबुर्रहमान से मिलकर तथा बंगलादेश के तमाम प्रगतिशील समाजवादी तत्वों की एकता कायम करके राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में लगें तो यह सभी के लिए अच्छा होगा।

चीनी नेताओं का शीर्षासन

चीनी नेता अपने हर विरोधी को अमरीकी साम्राज्यवाद का दलाल कहा करते थे। वे उग्र क्रान्तिकारी नारे लगाया करते थे और नासमझ लोग यह अनुभव करने लगते थे कि अमरीकी साम्राज्यवाद से चीनियों का शाश्वत् विरोध है। बहुत कम लोगों को यह मालूम था कि चीन पिछले अनेक वर्षों से पर्दे के पीछे अमरीका के साथ पोलैंड की राजधानी में बाकायदा सलाह-मशविरे करता रहा है। उसी का यह नतीजा था कि एक दिन पाकिस्तान में बात करते-करते किसिंगर दो-तीन दिन के लिए डुबकी लगा गये। और बाद में सुना तो पता चला कि वह पेकिंग जाकर निकले और वापिस वाशिंगटन लौट आये हैं। यह भी घोषणा हुई कि श्री निक्सन के स्वागत में चीनी नेताओं ने लाल गलीचा बिछा दिया था। एक दिन पहले तक श्री निक्सन को मुंह भर-भर कर गाली देने वाले चीनी नेता उनके स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा रहे थे।

जो लोग चीनी नेताओं की विचारधारा से परिचित हैं उन्हें चीनियों के इस शीर्षासन पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

दोहरी बातें करना, कहना कुछ और करना कुछ, बात एक से करना और घात दूसरे से लगाना, अपने पिट्ठू तैयार करना और साथ ही उनकी कब्र खोदने वाले दूसरे पिट्ठुओं की मदद करना, चीनियों की पुरानी कार्यनीति है। और इस कार्यनीति ने चीनी नेताओं को विश्व की राजनीति में एक घृणित खलनायक बना दिया है। यदि कोई देश उन्हें आदरपूर्वक आमंत्रित करता है तो वे उसकी मेहमांनवाजी का नाजायज फायदा उठाकर उसके घर में तोड़फोड़ करते हैं और यह सबक हम भारतीय ही नहीं दुनिया के बहुत से देश सीख चुके हैं।

जिस समय सोवियत लोग चीन का निर्माण कर रहे थे उस समय चीनी नेता सोवियत संघ के नेताओं के खिलाफ बड़े पैमाने पर तोड़फोड़ कर रहे थे। जिस समय हमारे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल

नेहरू चीनियों को बढ़ावा दे रहे थे, ठीक उसी समय वे नेहरू जी के खिलाफ प्रचार कर रहे थे और उन्हें उखाड़ फेंकना चाहते थे। श्रीलंका की प्रधानमन्त्री श्रीमती भण्डारनायके का पेकिंग की सड़कों पर एक ओर तो शानदार स्वागत किया जा रहा था और दूसरी ओर श्रीलंका के त्रात्सकीवादियों को उभार कर और करोड़ों रुपये खर्च करके उस सरकार का तख्ता उलटने की साजिश की जा रही थी। एक ओर तो जैरे के राष्ट्रपति श्री मोबुतू का स्वागत कर उन्हें आसमान पर चढ़ाया जा रहा था और दूसरी ओर करोड़ों रुपये नकद और लाखों रुपये के हथियार बांटकर मोबुतू का तख्ता उलटने की कोशिश की जा रही थी।

ऐसे हैं ये मार्क्सवादी-लेनिनवादी चीनी नेता जिनके पास बैठने और बात करने में भी आज दुनिया के सभ्य लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि पता नहीं वे कब क्या धोखा दे दें।

दोहरा व्यवहार और दोहरी बातें अन्त में एक दिन खुल जाती हैं। जिस समय चीनी नेता राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की दुहाई देते थे उस समय यह प्रतीत होता था जैसे बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन में चीनी नेता पता नहीं कितना सहयोग देंगे। परन्तु असल में दुनिया ने यह देखा कि चीनी नेता बंगाली देशभक्तों के रक्त से स्नान करती हुई पाकिस्तानी फौजों के साथ खड़े थे।

क्या यह मुक्ति आन्दोलन नहीं था

चीनी नेता जिस आन्दोलन को अपनी तोड़फोड़ के लिए लाभदायक समझते हैं उसका नाम मुक्ति आन्दोलन रख देते हैं, और जो आन्दोलन एशिया पर प्रभुत्व थोपने में उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं होता, उसे वे बागी जमात का "तोड़फोड़ आन्दोलन" कहने लगते हैं। भारत में नक्सलवादी आन्दोलन और इससे पहले मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तथा बर्मा में जनरल नेविन की समाजवादी सरकार के विरोध में करेन,

काचीन, और शान कबीलों के विघटनवादी आन्दोलनों को चीनी नेता राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन कहकर पुकारते थे। इसलिए, कि वे बर्मा में पृथकतावादी आन्दोलन का समर्थन करते हैं ताकि बर्मा छिन्न-भिन्न होकर चीनी नेताओं के चंगुल में आसानी से फंसाया जा सके। परन्तु चीनी नेता बंगलादेश की जनता के आन्दोलन को और आज पाकिस्तान में पख्तूनों, बल्लोचों तथा सिन्धियों के आत्मनिर्णय की मांग को मुक्ति आन्दोलन नहीं कहते।

इससे यह प्रकट हो जाता है कि चीनी नेताओं को इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि उस आन्दोलन का वस्तुवादी स्वरूप क्या है और उद्देश्य क्या है? इस दृष्टि से विचार करने पर बंगलादेश की जनता के आन्दोलन को प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का नाम देगा।

संयुक्त पाकिस्तान के पश्चिमी अंचल में उद्योगों का विकास करने के लिए तीन चौथाई पूंजी लगाई जाती है। निर्यात के जरिये पाकिस्तान जो विदेशी मुद्रा अर्जित करता था वे साधन प्रायः पूर्वी अंचल में विद्यमान थे। परन्तु विकास पूंजी का अधिकांश भाग पश्चिमी अंचल के विकास पर खर्च किया जाता था। बावजूद इसके कि देश के ५५ प्रतिशत से अधिक लोग पूर्वी अंचल में रहते थे, बजट अनुदानों का केवल छठा हिस्सा पूर्वी अंचल पर खर्च किया जाता था। पूर्वी अंचल में सेना और नागरिक प्रशासन के प्रमुख १० पदों में से ९ पदों पर पश्चिमी अंचल के लोग रखे जाते थे। इसी प्रकार पूर्वी अंचल की आबादी में एक प्रतिशत लोग भी उर्दू नहीं समझते थे और जो समझते भी थे तो लिख-पढ़ और बोल नहीं सकते थे। परन्तु सैनिक सत्ताधारियों ने उर्दू का प्रयोग करने के लिए बंगालियों को सदा मजबूर किया। यदि यह सब औपनिवेशिक दासता का अवशेष नहीं है और इस अन्याय के खिलाफ किया गया आन्दोलन राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन नहीं है, तो

हम यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि इसके अलावा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और क्या होता है ? इस अन्याय और पक्षपात के खिलाफ जनता में कितना रोष था। यह इसी से प्रकट हो जाता है कि दिसम्बर १९७० के आम चुनावों में जब पूर्वी अंचल की जनता को मतदान देने का अवसर मिला तो उसने पाकिस्तानी सैनिक सत्ताधारियों को धूल चटा दी और एकमत होकर शेख मुजीबुर्रहमान की पार्टी, अवामी लीग के पक्ष में मतदान किया। शेख मुजीबुर्रहमान उन बंगाली देशभक्तों में प्रथम रहे हैं जिन्होंने सैनिक सत्ताधारियों की निरंकुशता के खिलाफ बंगाली जनता का न्यायोचित रोष प्रकट किया है। उन्हें राष्ट्रीय असेम्बली के लिए पूर्वी अंचल से निर्धारित १६९ स्थानों में से १६७ स्थान मिले।

भारतीय जनता और हमारी नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस आन्दोलन को राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के ही रूप में स्वीकार किया। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि पाकिस्तान में जनतंत्र की स्थापना हो, पाकिस्तान शान्तिकामी विदेश नीति का अनुसरण करे, उसकी अर्थ-व्यवस्था सुधरे और वह आत्मनिर्भर हो। इस प्रकार हिन्दुस्तान अपने पड़ौस में सद्भावना का वातावरण उभरता हुआ देखना चाहता है। परन्तु उसे जब दो में से एक का चुनाव करना अनिवार्य हो गया तो हिन्दुस्तान ने राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाली जनता का समर्थन किया और पश्चिमी पाकिस्तान की याहियाशाही, सामन्तशाहों और साम्राज्यवाद के पैरोकार करोड़पतियों का तथा उन अफसरशाहों का समर्थन करने से इन्कार कर दिया जिन्होंने पाकिस्तान को प्रगतिशील ताकतों के लिए कारागार बना दिया था।

विपरीत इसके, चीनी नेताओं ने प्रगतिशील ताकतों के मुकाबिले दूसरे पक्ष का समर्थन किया।

मार्च १९७१ में जब याहियाशाही ने पाकिस्तान के पूर्वी अंचल

पर नरसंहार का नग्न तांडव रच रखा था उसी समय अमरीकी साम्राज्यवादियों और चीनी नेताओं के बीच तालमेल शुरू होता है। पाकिस्तानी शासकों ने ही किसिंगर को चुपके से पेकिंग भेजा था। और उन्होंने आपस में मिलकर यह समझौता किया था कि चीन एशिया से भागते हुए अमरीका को रोके रखने की कोशिश करेगा और अमरीका चीन को एशिया में चौधराहट दिलाने की कोशिश करेगा।

इस प्रकार इन दोनों ने मिल कर एशिया को अपने प्रभाव क्षेत्र में बांटने की योजना बनाई।

चीनी योजना चौपट

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि एशिया में तोड़फोड़ करने की चीनी नेताओं की योजना कब शुरू हुई थी ?

१९५५ में बान्डुग सम्मेलन से बहुत पहले ये योजना बन चुकी थी। चीनियों ने बनावटी तौर पर हिन्दुस्तान के साथ सहयोग कायम करने की कोशिश की। और आगे चलकर जब उन्होंने हिन्दुस्तान के साथ हथियार बन्द मुठभेड़ें शुरू कीं तो वह भी एक बड़े लक्ष्य की पूर्त्ति करने के लिए नियोजित षड्यन्त्र था।

भारत के साथ सहयोग की नीति का दुरुपयोग करके उन्होंने गुट-निरपेक्ष देशों तथा एशिया के नवस्वाधीन राष्ट्रों की पंक्ति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने की कोशिश की। और बाद के दिनों में जब उन्हें यह अनुभव हुआ कि चीनी जनता को अपनी लनतरानियों के जरिये साथ रखना मुश्किल है और चीनी जनता के गिरे हुए आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए वे कोई कार्य करने में असमर्थ हैं तो भारत के साथ मुठभेड़ करके वे चीनी जनता को यह कहकर धोखा देते थे कि "एक बड़ा देश चीन से दुश्मनी रखता है और जब तक उसे अच्छी तरह हरा न दिया जाय, चीनी जनता सुखी और समृद्ध नहीं हो सकती।"

इस प्रकार चीनियों ने हिन्दुस्तान के साथ दोस्ती का बाहरी मुल्कों को धोखा देने में इस्तेमाल किया तथा हिन्दुस्तान के साथ दुश्मनी का चीनी जनता को धोखा देने के लिए इस्तेमाल किया।

"बंगलादेश की मुक्ति से चीन की विस्तारवादी नीति को गहरा धक्का लगा है और उसकी तमाम योजनायें और मन्सूबे चौपट होते जा रहे हैं। उधर पश्चिमी पाकिस्तान में खुदाई खिदमतगारों और पख्तूनों के आदरणीय नेता अब्दुल गफ्फार खां और पूरे पाकिस्तान में जनवादियों का उभरता हुआ प्रगतिशील आन्दोलन चीनियों को बहुत परेशान किये है। बंगलादेश की मुक्ति के बाद श्री चाऊ एन लाई ने पेकिंग के एक भोज में कहा था कि "ढाका का पतन दक्षिण पूर्वी एशिया में अन्तहीन अशान्ति को जन्म देगा।"

चीनी नेता के इस वक्तव्य में यदि केवल 'अशान्ति' के स्थान पर 'शान्ति' रख दिया जाय तो टीका करने की आवश्यकता नहीं होगी। और इसी से यह अर्थ लगाया जा सकता है कि एशिया में अन्तहीन शान्ति की स्थापना होने से चीनी नेताओं को कितनी उलझन पैदा होती है। जिस समय ढाका की मुक्ति अत्यन्त सन्निकट थी उस समय चीनियों ने एक ओर तो भारतीय जनता और सरकार के साथ ब्लैकमेल किया और दूसरी ओर अमरीकी साम्राज्यवादी अपना बदनाम सातवां बेड़ा लेकर बंगाल की खाड़ी में आ घुसे। ये दोनों घटनायें आकस्मिक नहीं थीं।

बंगलादेश में रक्तपात रोकने के लिए जब सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रस्ताव रखा तो अमरीका ने उसका विरोध किया। परन्तु चीन ने दो कदम और आगे बढ़कर सुरक्षा परिषद में इस प्रस्ताव पर निषेधाधिकार का इस्तेमाल किया। चीनी नेताओं को इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि बंगलादेश में ३० लाख लोगों का नरसंहार किया जा चुका है और एक दिन भी लड़ाई चालू रहने का मतलब है लाखों लोगों को मृत्यु के मुंह में धकेलना।

बहुत से लोग यह बात नहीं समझ पाते कि अमरीका क्यों गुवाम सिद्धान्त पर चलता है? इसका मतलब है अमरीका को एशिया में खुद हथियार उठाने के बजाय एशियावासियों का सफाया करने के लिए एशियावासियों को ही हथियार देकर इस लायक कर देना कि वे मुक्ति आन्दोलनों को खून में डुबो सकें। वियतनाम में युद्ध का वियतनामीकरण करके, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली, अमरीका इसी नीति पर चलने की कोशिश करता रहा है। वही लक्ष्य आज चीनी नेताओं का भी है। इसीलिए वे एशिया के प्रायः हर देश में अपने पिट्ठू पालते रहे ताकि आसानी से उनके मुक्ति आन्दोलनों तथा आर्थिक विकास में तोड़फोड़ की जा सके।

जो लोग यह समझते हैं कि याहियाशाही, श्री भुट्टो या पाकिस्तान के प्रति किसी विशेष हमदर्दी के कारण चीनी नेता उनका समर्थन करते हैं, उनका भ्रम दूर हो जाना चाहिए। वे केवल भारत को कमजोर करने के लिए या उसकी प्रगतिशील नीतियों में प्रतिगामी मोड़ लाने के लिए यह सब करते हैं। उन्होंने पाकिस्तान को "किसी भी समय किसी प्रकार की सहायता" देने का आश्वासन बहुत पहले से दे रखा है। वे हर बार प्रत्येक पाकिस्तानी शासक को हिन्दुस्तान से लड़ने के लिए उकसाते रहते हैं। मार्च १९६३ में जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान आपस में मिलकर कश्मीर के सवाल पर बातचीत कर रहे थे तब उन्होंने पाकिस्तान को उकसाकर बातचीत विफल करवाई। परन्तु जब पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को बहादुर भारतीय जनता पीट-पीटकर खदेड़ती है तो एक बार भी चीनी नेताओं ने उनके लिए लड़ाई छेड़ने का खतरा मोल नहीं लिया।

आज तक का इतिहास इस बात का गवाह है कि चीनी नेता जिससे भी मित्रता करते हैं उससे केवल लेते ही लेते हैं, देते कुछ नहीं। परन्तु इनका साथ देने का नतीजा यह होता है कि इनके मित्रों तथा

समर्थकों की स्थिति तुरन्त डांवाडोल हो जाती है। इसलिए कि इनके समर्थक अपने देश, जनता और समाज की वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार काम नहीं करते बल्कि ऐसी हरकतें करने लगते हैं जिससे वे अपनी जनता की नजरों में भौंडे किस्म के दलाल अनुभव होने लगते हैं। परन्तु ये चीनी नेता उन समर्थकों के साथ भी विश्वासघात करते हैं। जब वे प्रभावहीन हो जाते हैं और इनके काम के लायक नहीं रह जाते तब ये भी उन्हें लात मार देते हैं।

बंगलादेश में तोड़-फोड़

चीनियों और अमरीकियों की अब यह आम विदेश नीति हो गई है कि वे "तवेले की बला बन्दर के सिर" मंढना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि हिन्दुस्तान को पाकिस्तान के जरिये उलझाकर रखा जाय। और वे श्री भुट्टो पर दबाव डालकर बंगलादेश को मान्यता देने से रोक रहे हैं। साथ ही वे बंगलादेश में ऐसी स्थिति पैदा करना चाहते हैं कि वह सोवियत संघ व भारत दोनों के लिए सिर दर्द बना रहे। इसी प्रकार वे सोवियत संघ को वियतनाम और मध्य एशिया के मामलों में इतना फंसाये रखना चाहते हैं कि एक ओर तो वहां के साम्राज्य-विरोधी आन्दोलनों की सहायता करने में ही सोवियत नेताओं की शक्ति नष्ट होती रहे और दूसरी ओर यदि साम्राज्यवादी ताकतें मजबूत हो जायें तो उसके लिए उन्हीं को दोषी ठहराया जा सके। मूल रूप से इन्हीं दो कारणों से वे एक ओर तो वियतनाम युद्ध को लम्बा खिंचवाना चाहते थे—शान्ति समझौता होने के बावजूद अभी भी उनके प्रयत्न चालू हैं, तथा दूसरी ओर वे मध्य-पूर्व में तनाव और मुठभेड़ चालू रखकर सोवियत संघ की भौतिक क्षमताओं को क्षत-विक्षत करना चाहते हैं। साथ ही साम्राज्य-विरोधी ताकतों की क्षणिक पराजय को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करके सोवियत रूस की साम्राज्यविरोधी भूमिका

को धूमिल करना चाहते हैं। इसलिए उनके पास हर प्रकार के मोहरे विद्यमान हैं। कहीं जनाब भुट्टो, कहीं श्रीमती गोल्दा मीर, कहीं थ्यू साहब। अमरीका का सी० आई० ए० अपने झोले में ऐसे हजारों बटखरे रखता और बनाता रहता है। श्री चांग काई-शेक का चीन श्री रूजवेल्ट वाले अमरीका का चीन था और श्री माओ त्से-तुंग का चीन श्री निक्सन के अमरीका का चीन है जो अमरीकी साम्राज्यवाद से मिलकर संसार में अपना विस्तार करना चाहता है।

आजकल बंगलादेश में सी० आई० ए० का बहुत जोर है और नई बात यह है कि चीनी नेताओं के जासूसी हीरो उसके कन्धे-से-कन्धा मिलाकर तोड़फोड़ के जरिए वह काम करना चाहते हैं जिसे वे खुली हमलावर नीति के जरिये नहीं कर सके। यद्यपि उनके नारे और कार्यनीति अलग-अलग हैं, परन्तु उनका लक्ष्य एक है और कभी-कभी तरीके भी एक हो जाते हैं। पहले उनकी नीति यह थी कि बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन को विफल करने के लिए बंगभाषी जनता का पाकिस्तान में बीजनाश किया जाय, और अब उनकी नीति यह है कि बंगलादेश की जनता को उसके सच्चे मित्रों—भारत और सोवियत संघ से पृथक कर दिया जाय। वे साढ़े सात करोड़ बंगालियों में इन दोनों के प्रति गहरी घृणा के ऐसे बीज बोना चाहते हैं कि इनके अच्छे काम भी उन्हें बुरे अनुभव होने लगें।

मान्यता के विरोध में

अभी संयुक्त राष्ट्रसंघ में बंगलादेश को मान्यता देने के सवाल पर चीन ने निषेधाधिकार का प्रयोग किया। चीनी प्रतिनिधि ने अपने पक्ष में तर्क देते हुये यह कहा था कि "बंगलादेश में विदेशी (भारतीय) फौजें विद्यमान हैं। इसलिए राष्ट्रसंघ में उसे मान्यता नहीं दी जा सकती।" कोई इन चीनी नेताओं से पूछे कि खुद चीन को संयुक्त राष्ट्र-

संघ में मान्यता क्यों मिल गई, जबकि ताईवान, जो चीन का ही अंग है, वहां अमरीकी फौजें पड़ी हुई हैं ? इसके अलावा, जापान में भी अमरीकी फौजें विद्यमान हैं। तो क्या चीन और जापान दोनों को ही संयुक्त राष्ट्रसंघ से निकाल देना चाहिए ? चीनी नेता यह अच्छी प्रकार जानते थे कि बंगलादेश में विदेशी फौजें नहीं हैं, परन्तु उन्हें उस वास्तविकता से क्या मतलब जो उनका स्वार्थ सिद्ध न कर सके ? वहां एक तर्क यह भी दिया गया था कि बंगलादेश ने वे सभी शर्तें पूरी नहीं की हैं जिन्हें पूरा करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों में कहा गया है। सब लोग यह जानते थे कि चीन परमाणु बम का विस्फोट कर रहा है और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने प्रस्ताव के जरिये इसका निषेध कर रखा है।

इसके अलावा, बंगलादेश को ९३ देशों ने मान्यता दे रखी है और चीन को केवल ७६ देशों ने मान्यता दी है। चीन २२ वर्षों तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के दरवाजे खटखटाता रहा और अमरीका ने उसे अन्दर नहीं घुसने दिया। बंगलादेश अपने जन्म के पहले ही साल में अमरीकी साम्राज्यवादियों और चीनी विस्तारवादियों के संयुक्त षड्यन्त्रों के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

दिसम्बर युद्ध के बाद पाकिस्तान दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का शिकार है। आम लोग यह आशा करते थे कि पाकिस्तान के विघटन और अपमानजनक पराजय से पाकिस्तानी शासक कुछ सबक लेंगे। शिमला सम्मेलन के अवसर पर श्री भुट्टो ने बार-बार इस प्रकार की घोषणा की थी कि :

"मैं हिन्दुस्तान के साथ दोस्ती करना चाहता हूं, दुश्मनी नहीं।"

लोगों ने यह आशा भी की थी कि बंगलादेश का निर्माण जनता की इच्छाओं के अनुरूप हुआ है और इस ठोस वास्तविकता को स्वीकार करके पाकिस्तानी शासकों को उसे कानूनी मान्यता दे देनी चाहिए।

यह मान्यता दिये जाने से पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में शान्ति की ताकतों को बल मिलेगा, तनाव कम होगा और आपसी बातचीत के जरिये सभी विवादास्पद समस्यायें, जिनमें युद्धबन्दियों की वापसी तथा काश्मीर का सवाल भी शामिल है, हल हो जायेंगी और तीनों राष्ट्र आर्थिक विकास के राजमार्ग पर चलते रहेंगे।

तीनों देशों के प्रगतिशील लोग यही आकांक्षा रखते थे और इसमें सन्देह नहीं है कि शिमला समझौते के अवसर पर श्री भुट्टो स्वयं भी इसी प्रकार की घोषणाएं कर रहे थे।

परन्तु हम यह नजरन्दाज नहीं कर सकते कि पाकिस्तानी जनरलों पर अमरीका का निर्णायक प्रभाव है और ये जनरल आज भी पाकिस्तान की राजनीति में प्रभावशाली स्थान रखते हैं। वामपक्षी शब्दावली इस्तेमाल करके जनता को गुमराह करने वाले लोग चीनियों के जबर्दस्त असर में थे और श्री भुट्टो उसमें प्रमुख हैं। ऐसी स्थिति में सुसंगत ढंग से किसी शान्तिकामी विदेश नीति पर चलना पाकिस्तान के लिए आसान काम नहीं है। एक ओर तो अमरीका ने अपना दबाव डाल रखा है और दूसरी ओर चीनी विस्तारवादियों ने अपनी तिकड़मों का जाल पूर रखा है तथा तीसरी ओर आज भी पाकिस्तान की राजनीति पर प्रतिगामी सामन्ती दलों का अटूट प्रभाव है।

परन्तु ये तीन प्रतिगामी ताकतें जब ४ प्रगतिशील वास्तविकताओं की दीवार से टकरातीं हैं तो हमें यह आशा बंधती है कि पाकिस्तान का यह सर्कस बहुत जल्दी ही बन्द होने वाला है :

१—बंगलादेश की वास्तविकता कब तक अनदेखी की जा सकती है ? हजार साल सिर पटक कर भी श्री भुट्टो, श्री चाऊ एन लाई और श्री निक्सन अब दुबारा बंगलादेश को पाकिस्तान का अंग नहीं बना सकते। एक-एक बंगाली शहीद होना तो मन्जूर कर सकता है परन्तु दुबारा किसी याहिया या भुट्टो की दासता स्वीकार नहीं कर सकता।

२—श्री भुट्टो को यद्यपि एक लाख पाकिस्तानी युद्धबन्दियों की आवश्यकता नहीं है, परन्तु पाकिस्तान के एक लाख परिवार अपने इन सदस्यों को कब तक हिन्दुस्तान और बंगलादेश की जेलों में रखा जाना पसन्द करेंगे। किसी न किसी दिन तो ये परिवार उनसे मांग करेंगे ही कि हमारे लोगों को मुक्त करवाकर हमारे परिवारों में लाओ। परन्तु जब तक श्री भुट्टो बंगलादेश और हिन्दुस्तान के साथ शान्ति सम्बन्ध कायम नहीं करते या बंगलादेश को मान्यता प्रदान नहीं करते तब तक ये युद्धबन्दी कैसे रिहा किये जा सकते हैं।

३—श्री भुट्टो जानते हैं कि सोवियत संघ महान् और शक्तिशाली राष्ट्र है और वह एक ऐसा देश है जो किसी का दोस्त हो तो संकट के समय अपना सब कुछ दांव पर लगा कर मित्र की सहायता करता है। यही कारण है कि श्री भुट्टो और पाकिस्तानी सरकार उस के साथ दोस्ती के सम्बन्ध कायम करना चाहती हैं परन्तु यह दोस्ती झांसा देकर प्राप्त नहीं की जा सकती। यह उसी देश को मिलती है जो सच्चे अर्थों में शान्ति की विदेश नीति अपनाता है। बंगलादेश और हिन्दुस्तान के खिलाफ दुश्मनी करके तथा इस प्रकार विश्व शान्ति को धोखा दे कर जनाब भुट्टो को यह दोस्ती मिलना सम्भव नहीं है।

४—पाकिस्तान में प्रगतिशील जनवादी आन्दोलन चाहे जितना कमजोर हो, परन्तु उसे हमेशा के लिए दफनाया नहीं जा सकता। बंगलादेश का उदय इस बात का सबूत है कि पाकिस्तान के प्रतिक्रियावादी बहुत दिनों तक जनता की प्रगतिशील आकांक्षाओं को दबा नहीं सकते। या तो वे जनतन्त्र कायम करेंगे और इस प्रकार बंगलादेश और हिन्दुस्तान के साथ दोस्ती सम्बन्ध कायम करना उनके लिए अनिवार्य हो जायगा और या फिर बचा-खुचा पाकिस्तान अन्त में फिर चार टुकड़ों में विभक्त हो कर रहेगा। विधि का यह अमिट लेख न तो श्री चाऊ एन लाई से मिटेगा, न श्रीं निक्सन से और न पाकिस्तान

के प्रतिक्रियावादियों से।

प्रश्न केवल इतना है कि चीनी नेता अबकी वार फिर किसके साथ खड़े होंगे ?

जब चीनी नेता श्री भुट्टो को अपने अपमान का बदला लेने के लिए हिन्दुस्तान के खिलाफ उकसाते हैं तो श्री भुट्टो चौंक जाते हैं। वह सोचने लगते हैं कि चीनी जिनकी मदद करते हैं वह डूब जाता है। उस समय श्री भुट्टो हिन्दुस्तान के खिलाफ लोहा गर्म करने के बजाय दोस्ती की बात करने लगते हैं। श्री भुट्टो के इस धर्म-संकट को देखकर चीनी षड्यन्त्रकारी टिक्का खां और मौदूदी तथा कयूम खां पर हाथ रखते हैं, उनके उभरने के डर से श्री भुट्टो फिर हिन्दुस्तान से लड़ने की बात करने लगते हैं। चीनियों की यही नीति है, जिसके कारण श्री भुट्टो कभी युद्ध की और कभी शान्ति की तथा कभी हिन्दुस्तान के साथ सलाह करने की और कभी तनाव फैलाने की बात करने लगते हैं।

पाकिस्तान की अखण्डता और चीनी नेता

कोई यह सवाल पूछ सकता है कि चीनी नेता पाकिस्तान के टूटने से क्यों नाराज हैं ? और उसे अखण्ड बनाये रखने में उनका क्या स्वार्थ हो सकता है ?

यदि चीनी नेता वास्तव में अखण्ड पाकिस्तान के पक्षपाती होते तो पिछले आम चुनावों के बाद याहिया खां को यह नेक सलाह देते कि शेख मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तान का प्रधानमन्त्री बना दो। परन्तु तब पाकिस्तान का राजनीतिक रूप ही बदल जाता, वह प्रगतिशील और जनवादी पाकिस्तान होता। वह फौजी तानाशाहों, प्रतिक्रियावादी पूंजी-पतियों और सामन्तों का नहीं बल्कि जनता का पाकिस्तान होता। ऐसा पाकिस्तान चीनी षड्यन्त्रकारियों के लिए किसी काम का नहीं था।

विपरीत इसके वह ऐसा पाकिस्तान चाहते हैं जो अखण्ड भी हो

और प्रतिक्रियावादी भी। ऐसा पाकिस्तान चीनियों के लिए बड़े काम का है। वे उसके जरिये काश्मीर और पूर्वी मोर्चे पर मुठभेड़ें करवा सकते हैं, हिन्दुस्तान के साधनों को व्यर्थ कामों में खपा सकते हैं और उसकी विकास योजनाओं की सफलताओं के लिए जरूरी साधनों को नष्ट करवा सकते हैं। दूसरे इसके जरिये इस्लामी मुल्कों में तोड़-फोड़ करना उसकी आम नीति रही है। तीसरे वह भारत व सोवियत संघ के बीच पाकिस्तान को दीवार बनाकर खड़ा रखना चाहता है।

परन्तु स्वतन्त्र बंगलादेश के निर्माण ने चीनी षड्यन्त्रकारियों तथा अमरीकी जासूसों के तमाम मंसूबों पर पानी फेर दिया है।

अध्याय दो

हिन्दुस्तान और चीन

आज से २३ साल पहले चीनी क्रान्ति की विजयपताका पूरे चीन पर फहराई थी। इसके जयघोष से पूरा एशिया और पूरा संसार पुलकित हो उठा था। चीनी क्रान्ति की सफलता के दो साल पहले १९४७ में हिन्दुस्तान ने राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त की थी। ये दोनों राष्ट्र मिल कर पूरे संसार की जनसंख्या का एक तिहाई से भी अधिक थे। हमारे दोनों देशों के साम्राज्यवादी बन्धनों से मुक्त होते ही पूरे संसार में आजादी की ऐसी शृंखलाबद्ध लहरें पैदा हुईं जिनमें एक के बाद दूसरा देश साम्राज्यवादी बन्धनों को तोड़कर मुक्त होता चला गया। श्रीलंका, बर्मा, इन्डोनेशिया, मलाया, सिंगापुर और वह हर छोटा-बड़ा मुल्क जो सदियों तक साम्राज्यवाद से संघर्ष करके मुक्ति प्राप्त करने की आशा करता था, एक ही झटके में साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त होता गया।

चीनी क्रान्ति की सफलता के समाचार से हमारे देशवासी विशेष रूप से पुलकित हुए थे। हमारे राष्ट्र निर्माता और शिक्षक पं० जवाहर लाल नेहरू ने देशवासियों के मन में चीनी क्रान्ति के प्रति विशेष ममता के भाव उजागर किये थे। यह किसी से छुपा नहीं है कि जापानी आक्रमण के प्रतिरोध के समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की तरफ

से स्वर्गीय डा० अटल के नेतृत्व में एक मेडीकल मिशन अपने चीनी भाइयों के घाव भरने के लिए चीन पहुंचा था। यह और भी उल्लेखनीय है कि यह डाक्टरी मिशन चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में लड़े जा रहे मुक्ति-युद्ध के उन सेनानियों के साथ जाकर जुड़ा था जो जापानी आक्रमणकारियों के विरोध में छापामार लड़ाई लड़ रहे थे। भारतवासियों ने चीनी क्रान्ति की सफलता के समाचार को अपनी ही क्रान्ति की सफलता के रूप में स्वीकार किया था और उनका अभिनन्दन किया था। हमें याद है कि १९४९ में देश के सैंकड़ों गांवों में किसानों ने चीनी क्रान्ति की सफलता के उत्सव मनाये थे।

इसके बाद जब एशिया और अफ्रीका में नये स्वाधीन राष्ट्रों की लहरें उठीं थीं तब बान्डुग में हमारे स्व० प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया था, जिसमें चीनी प्रधानमन्त्री श्री चाऊ एन लाई के साथ कन्धे-से-कन्धा मिला कर जो ऐतिहासिक घोषणायें की गईं थीं उनसे पूरा संसार प्रभावित हो उठा था।

इस प्रकार हम यह दावा कर सकते हैं कि उदार भारतवासियों ने चीनी क्रान्ति की सफलता में न केवल अपनी सफलता अनुभव की थी बल्कि यह माना था कि हमारी बगल में स्वाधीन, सार्वभौम तथा समाजवादी चीन के उदय से हिन्दुस्तान की आज़ादी और भी मजबूत हो गई है और भविष्य में अब कोई भी साम्राज्यवादी एशिया में दुबारा दुस्साहस नहीं कर सकेगा। हिन्दुस्तान अपने पड़ोस में एक बलवान मित्र को पाकर अपने आपको और भी विशाल तथा बलवान् अनुभव करने लगा।

हमने कभी इस सम्भावना पर विचार तक नहीं किया था कि चीन की सरकार किसी दिन हमें अपने शत्रुओं की गिनती में शामिल करेगी, उसके सिपाही अपने बूटों से पवित्र हिमालय के शिखरों को रौंद कर

रक्तरंजित करेंगे, अपनी हजारों भारतीय बहनों का सुहाग लूटेंगे और इस विशाल देश को अपना सर्वस्व दांव पर लगा कर अपनी सीमाओं की रक्षा के लिये जुट जाना पड़ेगा।

यद्यपि यह सही है कि हमारे दो देशों ने दो भिन्न समाज व्यवस्थाओं की छत्रछाया में दो प्रकार की शासन-प्रणालियां अपनाई थीं। परन्तु हम यह भरोसा रखते थे कि इस सबके बावजूद हम मिल कर चलेंगे, मिल कर साम्राज्यवाद से लोहा लेंगे, मिल कर अपने देशों की जर्जर अर्थ-व्यवस्थाओं का काया-कल्प करेंगे और कन्धे-से-कन्धा मिला कर हम दोनों, सगे भाइयों की तरह विश्व राजनीति के प्रांगण में इस उत्साह के साथ आगे बढ़ेंगे कि सौ साल की मंजिल दस या पन्द्रह वर्षों में तय हो जायेगी। तब स्वाधीनता, प्रगति, विश्वशान्ति एवं समाजवाद के विशाल राजपथ निष्कंटक हो जायेंगे। इसके अलावा, चीनी क्रान्ति के महान नेता कामरेड माओ त्से-तुंग, ल्यू शाओ ची, जनरल जू दे और चाऊ एन लाई के नाम देशवासियों में इतने लोकप्रिय हो चुके थे कि बहुत से लोग इन्हें नेतृत्व का आदर्श समझने लगे थे और इन्हें अपने ही देश के प्रमुख नेताओं की भांति मान्यता देने लगे थे। कामरेड ल्यू शाओ ची की विश्व विख्यात पुस्तक,

"हम अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बनें ?"

भारत की प्रत्येक भाषा में अनूदित की गई, उसकी हजारों प्रतियां न केवल कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं में चाव से पढ़ी गई बल्कि कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं तक ने ध्यान से उसे पढ़ा और उसे अच्छे राजनीतिक कार्य-कर्त्ता बनने की आदर्श दीक्षा समझा जाने लगा।

एक जमाना था कि पूरे हिन्दुस्तान के राजनीतिक क्षितिज पर हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे गूंजा करते थे और हमारी हजारों सालों की परम्परागत मैत्री ने जो नवीनता ग्रहण की थी, उसे प्राचीन इति-हास का सुसंगत परिणाम माना जाता था।

हमें सबसे अधिक दुःख और क्रोध इस बात का है कि भारतीय सीमाओं पर नग्न आक्रमण करने से पहले चीनी नेताओं ने हमारे नेताओं को बद-नाम करना शुरू कर दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू हमारे ऐसे सर्वमान्य नेता थे जिन्हें हम अपना राष्ट्र-निर्माता मानते हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन साम्राज्यवाद के खिलाफ निर्मम संघर्षों में बीता और जिनके बारे में हमारी यह धारणा है कि भारतीयों को कई सदियों के बाद इतना बड़ा व्यक्तित्व पाने का सौभाग्य मिला। अपने जीवन की अन्तिम बेला तक पं० नेहरू साम्राज्यवाद से संघर्ष करते रहे। विशाल भारतीय भूखण्ड की चप्पा-चप्पा भूमि जब तक उन्होंने साम्राज्यवाद से मुक्त नहीं करा ली तब तक उन्हें चैन नहीं मिला। पाण्डुचेरी फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों के कब्जे में था। गोवा, दमन और दीव पुर्तगाल के शिकंजे में थे। पुर्तगाल की पीठ पर विश्व की स्वाधीनता का शत्रु अमरीकी साम्राज्यवाद खड़ा था। परन्तु उन्हें तभी राहत मिली जब भारतीय सीमाओं से सभी साम्राज्यवादी अवशेष पीट-पीट कर बाहर खदेड़ दिये गये। परन्तु चीनी नेताओं ने हमारी भावनाओं का तिरष्कार करके पं० जवाहर लाल नेहरू को 'प्रतिक्रियावादी' कहा, 'विस्तारवादी' बताया और उन्हें 'साम्राज्यवाद का कटखना कुत्ता' कह कर सम्बोधित किया।

चीनी नेता जिस समय पं० नेहरू को 'साम्राज्यवाद का कट-खना कुत्ता' कह रहे थे, ठीक उसी समय चीनी नेता क्या कर रहे थे? वे साम्राज्यवाद की दलाली कर रहे थे। हांगकांग पर तब भी साम्रा-ज्यवादियों का कब्जा था और आज भी है। महत्वपूर्ण चीनी द्वीप उस समय भी पुर्त्तगाल के कब्जे में थे और आज भी हैं। फार्मोसा (ताईवान) पर उस समय भी अमरीकी फौजों और सातवें बेड़े का नियंत्रण था और आज भी है। उस समय भी चीनी नेता गला फाड़-फाड़ कर इन चीनी प्रदेशों की मुक्ति के लिए नारे लगाते थे और साम्राज्यवादियों को धमकाते थे कि किसी भी समय 'चीनी जनता' इन प्रदेशों की मुक्ति के

लिए 'युद्ध' छेड़ सकती तथा 'कागजी शेर' के छक्के छुड़ा सकती है।

परन्तु व्यवहार में क्या हुआ ? साम्राज्यवाद 'कागजी शेर' नहीं साबित हुआ बल्कि चीनी नेता जरूर कागजी योद्धा साबित हुए। ये प्रदेश आज भी साम्राज्यवादियों के अधिकार में हैं। चीनी नेताओं के जोशीले नारे सुनते-सुनते हमारे कान बहरे और बाल सफेद हो गये हैं। परन्तु अब तक तो हमने हांगकांग, मकाओ या फार्मोसा की मुक्ति के लिए मुक्ति सेना के अभियान होते नहीं देखे। जिन चीनी नेताओं ने कदम-कदम पर साम्राज्यवाद के सामने आत्मसमर्पण किया है और संसार भर के सैनिक सत्ताधारियों तथा प्रतिक्रियावादियों से गठबन्धन किया है, वे हमारे नेता और राष्ट्र-निर्माता को 'साम्राज्यवाद का कटखना कुत्ता'' बताते हैं जिसने अपनी चप्पा-चप्पा भूमि साम्राज्यवाद से मुक्त करा कर ही दम लिया था।

धावा बोला तो सही, परन्तु उल्टी जगह

चीनी नेता साम्राज्यवाद पर धावा बोलने की तो केवल डींग हांकते रहे। उन्होंने कोरिया युद्ध के बाद किसी भी भूभाग में, यहां तक कि चीनी भूभागों की मुक्ति के लिए भी साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष नहीं किया। हम छोटे मुंह बड़ी बात कहना ठीक नहीं समझते। परन्तु हमारा यह शत-प्रतिशत दावा है कि यदि चीनी नेता हांगकांग की मुक्ति के लिए, मकाओ एवं फार्मोसा को साम्राज्यवादी चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिए धावा बोलते तो साम्राज्यविरोधी भारतीय जनता और सरकार खुल कर उनका समर्थन करती। परन्तु हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के दूसरे होते हैं। साम्राज्यवाद के खिलाफ क्रान्तिकारी संघर्षों की डींग के पीछे चीनी नेताओं की परले सिरे की कायरता और अवसरवाद ही छिपा हुआ था। उन्होंने साम्राज्यवाद पर तो धावा नहीं बोला, परन्तु उन दो देशों की सीमाओं पर

जरूर धावा बोल दिया, जहां के निवासी चीनी क्रान्ति को अपनी ही क्रान्ति समझते थे। चीनियों ने भारतीय गणतंत्र पर धावा बोला। दुनिया के इतिहास में यह अनहोनी घटना थी जब किसी 'समाजवादी' देश ने लेनिन का झण्डा हाथ में लेकर किसी दूसरे देश पर धावा बोला हो। हमारा पूरा देश हक्का-बक्का रह गया।

इस आक्रमण से एक बार तो पूरे देश में इतनी भयानक-सी लहर दौड़ी थी कि यह देश अपनी साम्राज्यविरोधी परम्पराओं का परित्याग करके साम्राज्यवादी शिविर का बन्दी हो गया होता और यहां साम्राज्यवादी छावनियां पड़ चुकी होतीं। परन्तु पण्डित नेहरू की शानदार परम्पराओं का यह देश साम्राज्यवादी दलदल में फंसता-फंसता रह गया और हमने अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान, स्वाधीनता, स्वतंत्र विदेश नीति एवं सीमान्तों की रक्षा करने के लिए एक बार फिर अपना अस्तित्व दांव पर लगा दिया।

दूसरी बार, चीनी नेताओं ने सोवियत रूस की ओर धावा बोला और असुरी नदी का पानी उन रूसी भाइयों के खून से रंग दिया जिनके सहयोग के बिना न तो चीनी क्रान्ति कभी सफल हो सकती थी और न चीन के राष्ट्रीय उद्योगों की नींव रखी जा सकती थी।

परन्तु वे दोस्तों के ऊपर धावा बोलते हैं, उनका खून बहाते हैं और दुश्मनों के सामने दुम हिलाते हैं।

आज हम जब चीनी नेताओं की आलोचना करते हैं और उनके बुरे काम के पूरे एशिया की राजनीति पर पड़नेवाले बुरे प्रभावों की समीक्षा करते हैं, तो हमें भारी दुःख होता है। परन्तु चीनी नेताओं को आज भी अपनी करतूतों पर कोई ग्लानि और पश्चात्ताप नहीं है।

अतीत के सबक

हम लोग जो राष्ट्रीय कांग्रेस के साधारण कार्यकर्त्ता हैं और कल

तक साम्राज्यवाद से तथा आज प्रतिक्रियावादियों की राष्ट्रविरोधी हरकतों से संघर्ष कर रहे हैं, चीनी नेताओं की तरह उठते-बैठते लेनिनवाद के नाम का जाप नहीं करते। हमारा जो भी ध्यान मार्क्स और लेनिन की ओर गया है, वह हमारे नेता और शिक्षक पं० नेहरू की शिक्षाओं का ही परिणाम है। परन्तु इतनी बात हम भी जानते हैं कि लेनिन यह कहा करते थे कि गम्भीर राजनीतिक पार्टी वही होती है जो अपनी भूलों की आत्म-आलोचना करती है।

इस दृष्टि से यदि १९६२ में भारत पर चीनी हमले की आलोचना की जाय तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसा करके चीनी नेताओं ने भारत पर चोट तो क्या की थी, उन्होंने भारत में अमरीकी साम्राज्यवादियों की आशायें सौ गुना अधिक बढ़ा दी थीं। हमारे राष्ट्रीय संकट को साम्राज्यवादी अपने लिये वरदान बनाना चाहते थे। भविष्य इस बात को किसी दिन जरूर उजागर करेगा कि भारत पर इस चीनी हमले के पीछे साम्राज्यवादी साजिश थी या नहीं और साम्राज्यवादियों ने ही तो कहीं चीनी नेताओं को उकसा कर हांगकांग तथा पूर्व में अमरीकी अड्डों की ओर से उनका ध्यान विमुख करके उन्हें भारत की ओर तो अग्रसर नहीं किया था !

१९५४ में भारत और चीन ने मिल कर पंचशील के सिद्धान्तों का निर्माण किया था। ये सिद्धान्त और कुछ नहीं बल्कि विभिन्न देशों तथा व्यवस्थाओं के बीच सह-अस्तित्व के लेनिनवादी सिद्धान्त ही हैं। परन्तु चीनी हमले के समय भारत के प्रतिक्रियावादी और दुनिया के साम्राज्यवादी हमारी दशा पर घड़ियाली आंसू बहा कर उन दिनों की याद दिला कर व्यंग्य करते थे, जब हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे लगा कर हमने दिल में गर्मी पैदा करने वाले पंचशील के सिद्धान्तों की घोषणा की थी।

हिन्दुस्तान पर हमला

सन् १९६२ में चीन ने जब हिन्दुस्तान पर हमला किया तो कुछ लोगों ने इस पर अचम्भा प्रकट किया और कुछ लोगों ने इसे गणतांत्रिक हिन्दुस्तान पर "कम्युनिज्म का आक्रमण" बताया।

लम्बी दासता के बाद हिन्दुस्तान और चीन दुनिया के दो सबसे बड़े देश स्वाधीन हुए थे। उनकी अर्थ-व्यवस्था जर्जर थी। दुनिया की राजनीति के प्रांगण में उन दोनों ने ही अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया था। युद्ध करना या उसका बोझ सिर पर ढोना दोनों के लिए कल्पनातीत था।

इसके अलावा पं० नेहरू ने जब पंचशील का सिद्धान्त स्वीकार किया था तब पूरे संसार के लेनिनवादियों के लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात दूसरी नहीं हो सकती थी। संसार के दूसरे सबसे बड़े देश ने लेनिनवाद के सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को अपनी विदेश नीति का मूल आधार घोषित करके उसकी सत्यता और उपादेयता को प्रमाणित एवं प्रतिष्ठित किया था। इस दृष्टि से विचार करने पर सच्चे चीनी कम्युनिस्ट नेता इसे अपने लिए एक अच्छा खासा वरदान ही मानते थे। अच्छे मार्क्सवादी होने के नाते उन्हें कठिनाइयों का और यहां तक कि हमारी तरफ से होने वाली भड़कावे की हरकतों का भी सामना धैर्य के साथ करना चाहिए था।

यदि दो क्षण के लिए उन्हीं के आरोप को सही मानलें कि चीन के खिलाफ हमारी ओर से उत्तेजनात्मक कार्यवाही की गई थी तो अच्छे लेनिनवादी होने के नाते उनका यह कर्त्तव्य था कि वे समस्या का ऐसा कोई सिद्धान्तवादी और शान्तिपूर्ण समाधान निकालते जो हमारे हजारों साल पुराने पारम्परिक सम्बन्धों के अनुरूप होता और तब शस्त्रास्त्रों का वह घमासान युद्ध रुका रहता जिसने हम दोनों पड़ोसियों का सम्मिलित खून यांग त्सी और गंगा की धाराओं में बहाया और जिस पर हम

दोनों के शुभचिन्तक हक्के-बक्के रह गये।

विपरीत इसके, दुनिया की दो सबसे बड़ी ताकतें चीनी नेताओं के मुकाबिले कहीं अधिक समझदार साबित हुईं। हमारे दो देश जितनी कठिनाइयों में फंसे हुए थे, उससे हजारों गुना कठिन परिस्थिति तब थी जब क्यूबा के सवाल पर सोवियत संघ और अमरीका आमने-सामने खड़े थे। अमरीका ने पंचशील का सिद्धान्त कभी स्वीकार नहीं किया। वह साम्राज्यवादी देशों की अग्रणी शक्ति है। उसकी घोषित नीति शान्ति की रक्षा करना नहीं बल्कि युद्ध करना, तनाव फैलाना और युद्ध की तैयारियां करना हैं। इतिहास ने सोवियत संघ के कन्धों पर यह जिम्मेदारी छोड़ रखी है कि वह स्वाधीनता व मुक्ति आन्दोलनों की सहायता करे, राष्ट्रों की सार्वभौमिकता, विश्वशान्ति और उनके स्वाभिमान की रक्षा करे। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की हिफाजत करना और साथ ही क्यूबा की स्वतन्त्रता की रक्षा करना, दोनों बातें उस समय परस्पर-विरोधी प्रतीत होती थीं। परन्तु सोवियत संघ के परिपक्व नेतृत्व ने अमरीकी साम्राज्यवादियों के उकसावे के बावजूद अपनी सदा नवीन और रचनात्मक लेनिनवादी समझ का परिचय देकर क्यूबा की भी रक्षा कर ली और साथ ही विश्वशान्ति तथा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के लेनिनवादी सिद्धान्त को भी खरोंच नहीं आने दी। जिस रक्त ने पवित्र हिमालय को कलुषित किया है, वह इस बात का सबूत नहीं है कि चीनी नेता लेनिनवादी थे, वह इस बात का सबूत है कि उनका दिमाग निम्न पूंजीवादी है, वह राष्ट्रीय अहंकार से दूषित है। वे किसी भी सवाल पर अधिक गम्भीरता और दूरदर्शिता से विचार नहीं कर सकते। उन्होंने जिस समय हम पर हमला किया था उस समय हमारे हाथों में गुट-निरपेक्षता और शान्तिकामी विदेश नीति का झण्डा था। परन्तु मदान्ध चीनी नेताओं ने इस बात की परवाह नहीं की। वे हमारी मातृ-भूमि पर चढ़ आये और हमारी हजारों वर्गमील भूमि पर कब्जा कर

लिया। आज भी हमारा बहुत बड़ा भूभाग उनके कब्जे में है।

दूसरी ओर जब कैरेबियन सागर के ऊपर की हवाओं में युद्ध के खतरनाक बादल मंडरा रहे थे और पूरे संसार की मानवता सांस रोक कर यह देख रही थी कि क्यूबा के सवाल पर दोनों महाशक्तियां आपस में टकराईं तो दुनिया का क्या हाल होगा? तब रूसी नेता अपनी जिम्मेदारियां भूले नहीं थे। उस समय सोवियत नेताओं के परम उज्ज्वल लेनिनवाद की प्रामाणिकता और विजय देखने को मिली। और यह तो तब था जब दूसरा पक्ष साम्राज्यवादियों का था जिनका वर्ग चरित्र उकसावे पैदा करना है।

हमला क्यों?

वास्तव में १९६२ में हिन्दुस्तान पर चीनी हमले का मकसद बहुत खतरनाक मन्सूबों से भरा था। यह आक्रमण करके चीनियों ने कोई साधारण भूल नहीं की थी। यह कहना भी सही नहीं है कि यह उनकी सैद्धान्तिक नासमझी है। वास्तव में चीनी नेता यह कल्पना करते थे कि जब दो महाशक्तियां क्यूबा के सवाल पर आमने-सामने खड़ी हैं तो उनका युद्ध, और उनका सर्वनाश भी अनिवार्य हो गया है। इस अवसर का लाभ उठाकर चीनी नेता भारत को अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे। लेकिन ज्यों ही क्यूबा का संकट टला, उसके ठीक तीन दिन बाद चीनी नेता अपनी सेनाओं के साथ वापिस मुड़ गये। उन्हें यह आशा भी नहीं थी कि भारतीय जनता अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए इतनी प्रबल एकता और साहस का परिचय देगी। इसके अलावा, जब तक उन्हें यह अनुभव होता रहा कि सोवियत रूस क्यूबा में फंसा हुआ है और वह भारत-चीन के मामलों में दखल देने में असमर्थ है, तब तक वे हमला करते रहे।

इस आक्रमण से चीनियों की भी कम हानि नहीं हुई। चीन ने एक

महत्त्वपूर्ण तटस्थ देश की मित्रता खो दी और इसके बाद वह सिसकता-सिसकता राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में खलनायक की पदवी पर पहुंच गया। आज उसकी कथनी और करनी में किसी को भी विश्वास नहीं है।

चीनी नेता यदि वास्तव में लेनिनवादी होते तो भारत पर हमला करने के बाद वे गम्भीर आत्म-आलोचना करते। हमारा यह अटूट विश्वास है कि लेनिनवादी विदेश नीति पर विश्वास करने वाला कोई राष्ट्र दूसरे देश पर आक्रमण नहीं करता। इसलिए कि बाहरी आक्रमण से हमेशा उन प्रतिक्रियावादी ताकतों को बल मिलता है जो यथास्थिति कायम रखना चाहती और समाजवादी क्रान्ति को रोकने का प्रयत्न करती हैं।

इस चीनी हमले के पीछे खतरनाक मन्सूबा क्या था? वे यह चाहते थे कि हिन्दुस्तान की गुट-निरपेक्षता की नीति रद्द हो जाय। देश में प्रतिक्रियावाद की ऐसी बाढ़ आ जाय जिसमें नेहरूवाद, गुट-निरपेक्षता और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं समाजवाद की परिसमाप्ति अनिवार्य हो जाय।

इस हमले के अवसर पर भारत में प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद को अभूतपूर्व बढ़ावा मिला और समाजवादी देशों के विरोध में पश्चिमी ताकतों के साथ गठबन्धन करने वाली पार्टियों को इतना बल मिला कि विश्वासपूर्वक गुट-निरपेक्षता की नीति की पैरवी करना और समाजवादी देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध जोड़ना कठिन होता चला गया।

जिन लोगों को चीनी हमले के बाद के दिनों की याद ताजा है वे यह नहीं भूले होंगे कि उन दिनों साम्राज्यवादी, जो हमारी आजादी और स्वाभिमान के परम्परागत शत्रु रहे हैं, कितने अहंकार के साथ सड़कों पर घूमा करते थे। वे हमें "हवाई छतरी" दे रहे थे। हमारी सीमाओं पर "दौरे" करते थे और हमारे सबसे बड़े "मददगार" बनने

का ढोंग करते थे।

नेहरूवाद खरा उतरा

चीनी नेताओं के राष्ट्रीय अहंकार और निम्न पूंजीवादी भटकावों के मुकाबिले नेहरू का नेतृत्व अधिक सुसंगत, वैज्ञानिक और ठोस आधार पर खड़ा साबित हुआ। चीनियों ने नेहरूवाद को भ्रान्तिपूर्वक प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद के साथ एकाकार करके देखा था। चीनी यह आशा करते थे कि एक ही झटके में नेहरू के सिद्धान्त हवा में उड़ जायेंगे। हिन्दुस्तान गुट-निरपेक्षता की नीति का परित्याग कर देगा और अपने स्वाभिमान की पताका फेंककर पश्चिमी साम्राज्यवादियों के सामने आत्मसमर्पण करके 'त्राहिमाम्' की गुहार मचायेगा। परन्तु चीनी दुस्साहसवादियों ने चाहे जितने तूफान और झंझट खड़े किये हों, हमारा प्रगतिशील राष्ट्रवाद चट्टान की तरह अडिग खड़ा रहा और विपरीत परिस्थितियों की अग्नि परीक्षा में वह खरा सोना साबित हुआ। उसने गुटों से अलग रहने की नीति के स्थान पर साम्राज्यवादियों के साथ गठबन्धन की नीति का आश्रय नहीं लिया। उसने समाजवादी दुनिया के साथ मैत्री के बन्धन ढीले करने के बजाय उन्हें और भी मजबूत किया। जब गुटों से अलग रहने वाले कोलम्बो राष्ट्रों ने भारत-चीन के बीच सुलह के प्रस्ताव रखे तो भारत ने उनका स्वागत किया।

इस भटकाव के केवल दो ही नतीजे निकल सकते हैं। या तो सह-अस्तित्व सम्बन्धी चीनी नेताओं की समझ सही नहीं थी और उस पर वे सुसंगत ढंग से आचरण नहीं कर सकते थे और या फिर वे जान-बूझ कर एशिया में तनाव पैदा करना चाहते थे, और सामाजिक प्रगति को पथभ्रष्ट करने के लिए साजिशें कर रहे थे।

चीनी नेताओं ने बड़े गर्व के साथ यह दावा किया है कि उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद का 'चीनीकरण' किया है। विपरीत इसके हमारे

नेता और शिक्षक पं० जवाहरलाल नेहरू यह तो मानते थे कि विभिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों में समाजवाद के सिद्धान्त लागू करने के रास्ते भिन्न हो सकते हैं, परन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि समाजवाद के मूल सिद्धान्त या मार्क्सवाद-लेनिनवाद की जीवन प्रणाली प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न हो सकती है। इतना ही नहीं, १९६० में अर्थात् भारत पर चीनी आक्रमण के करीब ढाई वर्ष पहले मास्को में जो अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सम्मेलन हुआ था, उसमें चीनी नेताओं के इस 'चीनीकरण' के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की गई थी। जीवन के अनुभव ने यह प्रमाणित कर दिया है कि चीनी नेताओं ने अपने दूसरे साथियों की चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया। उनके 'चीनीकरण' के सिद्धान्त की चीनी और भारतीय जनता तथा पूरे एशियाई भूखण्ड को बहुत गहरी कीमत अदा करनी पड़ी है।

दुनिया के सभी कम्युनिस्ट और प्रगतिशील राष्ट्रवादी यह जानते हैं कि अपने जीवन काल में लेनिन ने क्रान्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पड़ोसियों के साथ अच्छे सम्बन्धों की स्थापना पर और साम्राज्यवादियों को घटनाक्रम से अलग डालने की नीति पर सबसे ज्यादा जोर दिया था। इसके लिए उन्होंने तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान और यहां तक कि यूरोप के उन दूसरे पड़ोसी देशों को भी वे क्षेत्रीय सुविधायें दी थीं जो जार साम्राज्य की परम्परागत सीमाओं के अन्तर्गत आते थे।

लेनिन ने, किसी जमाने में जार साम्राज्य के अंग बाल्टिक देशों को केवल पृथक् होने का अधिकार ही नहीं दिया था बल्कि उन्हें ऐसी विशेष सुविधायें भी दी थीं जिनसे उनके नये पूंजीवादी शासकों को सन्तोष होता था।

एस्तोनिया के साथ सन्धि की पैरवी करते हुए लेनिन ने कहा था :

"एस्तोनिया के साथ ऐसी परिस्थितियों में शान्ति की गई थी जिनमें हमने बहुत-सी ऐसी प्रादेशिक रियायतें दीं जो राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अक्षरशः अनुरूप नहीं थीं, परन्तु जिनके द्वारा अपनी करनी से हमने यह साबित कर दिया है कि सीमा का प्रश्न हमारे लिए गौण महत्त्व का है जबकि शान्तिपूर्ण सम्बन्धों का प्रश्न अर्थात् प्रत्येक राष्ट्र के अन्दर जीवन की परिस्थितियों के समुचित विकास के लिए प्रतीक्षा करने की उपयुक्तता, न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रश्न था बल्कि इस ढंग का प्रश्न था जिसके द्वारा हम अपने विरोधी राष्ट्रों का भी विश्वास प्राप्त कर सकें।"

इस प्रकार विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि लेनिनवादी समझ वही है जिसका ऊपर की पंक्तियों में लेनिन ने प्रतिपादन किया है। लेनिन ने अपने व्यक्तित्व से जिस शक्तिशाली समाजवादी सोवियत संघ की स्थापना की थी उसके झण्डे पर लिखा था, "विरोधी राष्ट्रों तक का विश्वास प्राप्त करो, जरूरत पड़े तो उन्हें प्रादेशिक रियायतें दे दो"। परन्तु "हर मूल्य पर शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करो" और ऐसी परिस्थिति तैयार करो जिनमें "सामाजिक क्रान्ति के लिए अनुकूल वातावरण" बने। किन्तु ये चीनी नेता एक ओर तो लेनिनवाद के नाम की माला जपते हैं और दूसरी ओर ऐसे मित्र देश पर चढ़ाई करते हैं जो पूरे संसार के साथ और खुद चीन के साथ मित्रता के सम्बन्ध कायम रखना चाहता है।

रियायतें देने के स्थान पर उन्होंने हमारे खिलाफ ऐसे ऊट-पटांग दावे करने शुरू कर दिये और इस प्रकार पूरे ऐतिहासिक विकास को पीछे की ओर, और नकारात्मक दिशा में धकेल दिया जिससे सर्वत्र चिन्ता और क्षोभ व्याप्त हो गया तथा चीनियों की इस करतूत से साम्राज्यवादी खेमे में घी के चिराग जलने लगे, भारतीय प्रतिक्रियावादियों के चेहरे खिल उठे और समाजवादी शिविर में निराशा छा

गई तथा भारत की प्रगतिशील ताकतें निस्तेज होती चली गईं।

इस प्रकार यदि हम आरोप लगावें कि हिन्दुस्तान और दूसरे पड़ोसियों के बारे में चीनी नेताओं का दृष्टिकोण हू-बहू वही है जो चांग काई-शेक का था, तो गलत नहीं होगा।

सबसे ज्यादा अचम्भे की बात तो यह है कि चीनी नेता अपनी अन्ध-राष्ट्रवादी धारणाओं पर पर्दा डालने के लिए इस प्रकार की बकवास करते रहे हैं कि "मैक मोहन लाइन" साम्राज्यवादियों की बनाई हुई है, "अंग्रेजों ने चीनी जनता के साथ जुल्म किया है" और "हम उन सीमाओं को नहीं मान सकते जो अंग्रेजों ने उस समय बनाई थीं जब चीन एक कमजोर राष्ट्र था।"

यह बात भी अगर सही है तो अब तो हिन्दुस्तान पर अंग्रेज राज्य नहीं करते और वे सभी क्षेत्र भारतीय गणराज्य की सीमाओं के अविभाज्य अंग हैं। भारतीय गणराज्य चीन के साथ अटूट मैत्री के धागे में बंधे रहने की निरन्तर घोषणायें करता रहता है, फिर चीनी नेता इस देश के साथ दुश्मनी क्यों रखते हैं ?

इसके अलावा यह कैसा इतिहास है कि चीनी नेता अतीत की साम्राज्यवादी हरकतों को आज के साम्राज्यविरोधी भारत के खिलाफ इस्तेमाल करते हैं और अतीत की ऐतिहासिक स्मृतियों को वर्तमान की वास्तविकता से अलग करके ऐसी नीतियों पर चलते हैं जिससे दोनों का सामूहिक शत्रु, साम्राज्यवाद हर प्रकार की चोट से बचा रहता है और मित्र हिन्दुस्तान पर क्रूरतापूर्ण हमला किया जाता है।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि चीनियों की हिन्दुस्तान के साथ दुश्मनी का मूल कारण एक ओर तो उनकी गलत समझ है और दूसरी ओर वे ऐसा वातावरण बनाना चाहते हैं जिससे हिन्दुस्तान में प्रगतिशील ताकतें कमजोर हों तथा प्रतिगामी ताकतों का पलड़ा भारी हो। उनकी कथनी और करनी इसी लक्ष्य से प्रेरित है।

चीनियों की डींग

अक्तूबर १९६२ के अन्तिम दिनों में जब सीमा पर गम्भीर संकट छाया हुआ था और सशस्त्र मुठभेड़ें होने लगी थीं उस समय **पीपुल्स डेली** (जेन मिन जेहपाओ) ने एक सम्पादकीय लिखा था :

"अब समय आ गया है कि श्री नेहरू से ऊंची आवाज़ में कह दिया जाय कि विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध करने की गौरवशाली परम्परा वाली चीनी सेना की टुकड़ियां अपने ही प्रदेश में किसी के द्वारा नहीं खदेड़ी जा सकतीं।

एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा :

"इतिहास ने बार-बार सिद्ध कर दिया है कि चीनी मैदानों से चीनी सेनाएं नहीं बल्कि जापानी साम्राज्यवादियों एवं अमरीकियों की फौजें खदेड़ी गई हैं। अब तक विदेशी आक्रमणकारियों का चीनी भूमि पर यही हश्र हुआ है और भविष्य में भी यही होगा। अभी भी कुछ ऐसे पागल हैं जो हमारी भलमानसाहत की सलाहों की उपेक्षा करते हैं और एक बार फिर अखाड़े में उतरना चाहते हैं, तो फिर उन्हें उतरने दो, इतिहास उन्हें अकाट्य निर्णय देगा।"

इसके बाद सम्पादकीय चीनी जनता और अपनी फौजों को ललकारता है :

"भारत-चीन सीमाओं की रक्षा करने वाले, जनमुक्ति सेना के सभी सेनापतियो और योद्धाओ! अपनी जागरूकता सैंकड़ों गुना बढ़ा दो।

"तुम्हारा पवित्र कर्त्तव्य अपनी सीमाओं की रक्षा करना और किसी भी आक्रान्ता पर जबर्दस्त जवाबी हमले के लिए तैयार रहना है।"

हम यह आशा करते थे कि चीन के मदान्ध नेता अपनी आत्म-श्लाघा भरी डींगों को अब भूल चुके होंगे। परन्तु वे आज भी मानसिक

तौर पर वहीं खड़े हैं, जहां दस वर्ष पूर्व थे। यह कह कर हम चीनी जनता का अपमान नहीं करना चाहते कि जिन चीनी नेताओं ने हमारे नेता पं० नेहरू को आक्रमणकारी कहा था, उन्हें पूरे संसार का प्रगतिशील जनमत आज भी साम्राज्यविरोधी नेता के इस रूप में याद करता है। यद्यपि यह सही है कि इतिहास में चीनी जनता की क्रान्तिकारी स्मृतियां अमिट हैं, और चीनी जनता ने बड़े-बड़े आक्रमणकारियों का और साम्राज्यवादियों का वीरता के साथ मुकाबिला किया है, परन्तु चीनी शासन की बागडोर जब से मौजूदा चीनी नेताओं के हाथों में आई है तब से उन्होंने कदम-कदम पर क्रान्ति के साथ विश्वासघात किया है और साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेके हैं।

विपरीत इसके, हम विनम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि अपने नेता पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारतीय जनता ने ब्रिटिश, फ्रांसीसी एवं पुर्तगाली साम्राज्यवादियों के चंगुल से अपनी मातृभूमि की चप्पा-चप्पा जमीन मुक्त करा ली है और एक सार्वभौम तथा स्वाधीन भारतीय गणतन्त्र की स्थापना की है। फिर भी चीनी नेता हमारे नेता को साम्राज्यवाद का दलाल कहते हैं, और जो खुद साम्राज्यवादी अमरीका की दलाली कर रहे हैं वे अपने आपको मार्क्सवादी-लेनिनवादी कहते हैं।

चीनी नेताओं की यदि पड़ोसी देशों के साथ अच्छे पड़ोसियों जैसा सलूक करके शासन व्यवस्था चलाने की पूंजीवादी जनतन्त्र की साधारण परम्पराओं के प्रति भी थोड़ी सी आस्था होती तो अपने गिरेबान में मुंह डालकर वे यह सोचने को मजबूर जरूर होते कि ५६ करोड़ की आबादी का हिन्दुस्तान उन्हें उसी दृष्टि से देखने लगा है जिस दृष्टि से वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद को देखा करता था।

परन्तु चीनी नेता प्रगतिशील राष्ट्रवादी भी नहीं हैं और वे केवल चीनी सम्राटों की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं को मूर्तरूप देने की उछल-

कूद में पूरे संसार का वातावरण दूषित करने में लगे हुए हैं।

दुनिया में और भी प्रगतिशील हैं

ये चीनी नेता निम्नपूंजीवादी राष्ट्रीय अहंकार से दूषित हैं—वे अपने आपको दुनिया में लेनिन का एकमात्र अनुयायी मानते हैं परन्तु संसार में और भी लेनिनवादी हैं। वे स्वाधीन राष्ट्रों के शासकों के प्रति सद्‌भावना बढ़ाते हैं, उनके स्वतन्त्र राष्ट्रीय आर्थिक विकास में सहयोग देकर साम्राज्यवादियों पर उनकी निर्भरता कम करते हैं। भौगोलिक दावों की महत्ता पर जोर न देकर सम्बन्ध सामान्य करने पर अधिक बल देते हैं ताकि साम्राज्यवादियों को उकसावे पैदा करने का अवसर न मिले तथा ऐसी नीति का अनुसरण करते हैं जिसके माध्यम से समाजवाद के पक्ष में जनमत का निर्माण तथा प्रतिक्रियावादी पार्टियों की स्थिति कमजोर हो।

हम यह अनुभव करते हैं कि चीनियों के व्यवहार से भारत में प्रगतिशील राष्ट्रवादियों की स्थिति कमजोर हुई लेकिन सोवियत संघ, चेकोस्लोवाकिया और दूसरे समाजवादी देशों की सही समझ और कार्यनीति ने न केवल हमारी ही स्थिति मजबूत की बल्कि चीनियों के उकसावे और साम्राज्यवादी देशों के षड्यत्रों के बावजूद, हमारे देश का सम्बन्ध समाजवादी शिविर के साथ उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता चला गया। साम्राज्यवादियों ने हमें बहुत लोभ-लालच दिया। परन्तु हम जानते थे कि यह सब धोखा है,और केवल समाजवादी शिविर ही भारतीय जनता का सच्चा मित्र और मददगार हो सकता है।

यदि वे साम्राज्यविरोधी होते ?

यदि चीनी नेता वास्तव में साम्राज्यविरोधी होते, जैसा कि वे दावा करते हैं तो ५६ करोड़ की आबादी के हमारे देश को साम्राज्य-

वादी शिविर में धकेलने की कोशिश न करते। वे हमारे साथ ऐसा व्यवहार करते जिससे राष्ट्र की प्रतिक्रियावादी ताकतें कमजोर पड़तीं और ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण उभरता जो दोनों देशों को आपस के अटूट भाईचारे में बांध देता। परन्तु चीनी नेताओं ने सीमा विवाद को उसकी सीमा से बाहर धकेल कर दो व्यवस्थाओं के बीच सीधे संघर्ष का रूप देने की कोशिश की। चीनी नेता बड़ी बेशर्मी के साथ रात-दिन यह प्रचार करते थे कि "हिन्दुस्तान में प्रतिक्रियावादी पूंजीपति शासन करते हैं," इन पूंजीपतियों की पीठ पर अमरीकी साम्राज्यवाद की शस्त्रास्त्र सहायता के अम्बार लगे हुए हैं और "पूंजीवादी भारत ने समाजवादी चीन पर आक्रमण कर दिया है।"

विपरीत इसके, हमारी सरकार और भारतीय जनता का दृष्टि-कोण अधिक सुसंगठित और प्रगतिशील था। पं० नेहरू ने चीनी उत्तजनाओं के बावजूद पश्चिम के साम्राज्यवादियों की साम्यवाद-विरोधी ध्वनि पर नाचने से साफ इन्कार कर दिया और उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी कि "यह विवाद दो देशों की सीमाओं का है और यह दो व्यवस्थाओं का, पूंजीवाद तथा समाजवाद का संघर्ष नहीं है।"

इतना ही नहीं, चीनी हमले के अवसर पर प्रतिक्रियावादियों के हौंसले इतने बढ़ गये कि वे प्रगतिशील पार्टियों के कार्यालयों में आग लगाने लगे, जनवादी नेताओं पर हमले करने लगे तथा भारत के तत्का-लीन सुयोग्य रक्षामंत्री श्री वी० के० कृष्ण मेनन के त्याग-पत्र के बाद विशाल पैमाने पर तोड़-फोड़ करने लगे ताकि देश की प्रगतिशील धारा को समूल पलट दें। तब हमारे वृद्ध राजनेता ने आकाशवाणी पर उन्हें ललकारा था, और यह चेतावनी दी थी कि "हिन्दुस्तान जनतांत्रिक परम्पराओं का देश है और वह इस प्रकार की फासिस्ट प्रवृत्तियों को कदापि सहन नहीं करेगा।" जिस प्रकार निर्जन वन में घमा-चौकड़ी मचाने वाले गीदड़ों और भेड़ियों की तमाम हलचल शेर की दहाड़

सुनकर बन्द हो जाती है, उसी प्रकार हमारे श्रद्धेय राजनेता के गर्जन के उपरान्त ये फासिस्ट प्रवृत्तियां शान्त हो गईं थीं।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि चीनी अपने आपको लेनिनवादी कहते हैं, अपने राष्ट्र को समाजवादी समझते हैं, हिन्दुस्तान के साथ अपने सीमा सम्बन्धी विवाद को वे "दो व्यवस्थाओं के बीच संघर्ष" की संज्ञा देते हैं, और यही सीमा विवाद जब वे समाजवाद के आदि देश, सोवियत संघ के साथ छेड़ते हैं तो उसे भी "सामाजिक साम्राज्य-वादी" कहकर पुकारने लगते हैं।

चीनी नेता जब घबरा उठे

हमारे स्वाधीन राष्ट्र पर चीनी नेताओं ने जब हमला किया था तब उन्होंने बड़े-बड़े ख्याली पुलाव पकाये थे। वे यह आशा करते थे कि एक ही हल्ले में हमारा जनतन्त्र बालू की दीवार की तरह ढह जायेगा। हमारी गुटनिरपेक्षता और शान्तिकामी विदेश नीति सूखे पत्ते की तरह हवा में उड़ जायेगी। ५६ करोड़ की आबादी का देश अपना राष्ट्रीय स्वाभिमान फेंक कर या तो चीनी सामन्तशाहों के कदमों में जा गिरेगा या फिर अमरीकी साम्राज्यवादियों के सम्मुख हाथ जोड़-कर गिड़गिड़ाने लगेगा। परन्तु भगतसिंह, जवाहरलाल और गांधी का यह देश न तो इतनी शीघ्रता से आत्मसमर्पण कर सकता था और न अपनी परम्परागत नीतियों का परित्याग कर सकता था। पूरा भारत एक व्यक्ति की भांति उत्तेजित होकर खड़ा हो गया और ऐसा प्रतीत होता था जैसे हिन्दुस्तान की तमाम विविधताएं अकस्मात समाप्त हो गई हैं और चीनियों को काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक लौह इच्छाशक्ति वाले राष्ट्र की भावनाओं से टकराकर भयभीत होना पड़ा है। निस्संदेह हम उन अनगिनत मित्रों और सरकारों के परम अनुग्रहीत हैं जहां लाल झण्डे का शासन है, जो हमारी ही तरह गम्भीर

चिन्ता और क्रोध से भर उठे थे तथा अन्दर ही अन्दर चीनी नेताओं को चेतावनी दे रहे थे कि "भारतीय सीमाओं से वापिस लौट आओ।"

देशभक्त भारतीयों को इस सजीव अनुभव से बल मिला था कि विश्वव्यापी कम्युनिस्ट आन्दोलन ने चीन का नहीं, बल्कि भारत का समर्थन किया है।

इस पर एक बार चीनी नेताओं ने अपने सोवियत कामरेडों के खिलाफ जहर उगलते हुए कहा था :

"सोवियत नेता चीनियों को अपना भाई कहते हैं, परन्तु हिन्दुस्तानी प्रतिक्रियावादियों के साथ अपने कबीले के लोगों जैसा सलूक करते हैं।" ऐसा क्यों था ? इसलिए कि सोवियत संघ और पूरे समाजवादी शिविर ने चीन को अपने उन्मादपूर्ण दुस्साहस से दूर हटने के लिए कहा था और भारतीयों ने चीनियों के अपमानजनक व्यवहार के बावजूद भी लेनिन के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों से नाता नहीं तोड़ा था।

भारतीय प्रतिक्रियावादी और चीनी नेता

यह अचम्भे की बात है कि पिछले २०-२५ वर्षों से प्रायः हर सवाल पर प्रतिक्रियावादी हिन्दुस्तान को चीनी नेताओं जैसे नारे ही देते रहे हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि इनका यह रिश्ता किसी सिद्धान्त पर आधारित है।

१९५८ में लोकसभा के बजट में भाग लेते हुए प्रतिक्रियावादियों के आचार्य श्री जे० बी० कृपलानी ने पं० नेहरू पर आक्षेप करते हुए कहा था : "चीन सैनिक दृष्टि से पूर्ण सुसज्जित एक महान देश है। लेकिन चीन के साथ हमारा सम्बन्ध भाई-चारे का है। उन्होंने पंचशील और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व को स्वीकार कर लिया है। फिर प्रतिरक्षा पर यह खर्च क्यों बढ़ाया जा रहा है ?"

परन्तु अक्तूबर १९६२ में चीनी हमले के बाद इन्हीं आचार्य का

निम्नलिखित कथन था :

"मैं १९५० से ही भारत सरकार को चीनी खतरे से सावधान करता आ रहा हूं। परन्तु सरकार और जनता ने मेरी नहीं सुनी।"

(६ नवम्बर को पटना में भाषण)

अर्थात् जब राष्ट्र की रक्षा के लिए बजट अनुदान मांगा जा रहा था तब वह कह रहे थे इसकी "जरूरत नहीं" है। परन्तु जब चीनी ताना-शाहों ने हम पर हमला कर दिया तब यह रोना रोने लगे, "हमसे बजट अनुदान क्यों नहीं मांगे गये ?"

१९५४ में हमारे राष्ट्रनायक ने जब तिब्बत के सवाल पर चीनियों से समझौता किया तो उन्होंने "हिमालय बचाओ" सम्मेलन किया और इस बात पर क्रोध प्रगट किया कि केवल भारत की समस्याओं को सुलझाने में ही इनका योगदान लेना जरूरी नहीं है बल्कि तिब्बत का भाग्य भी उन्हीं की इच्छाओं के अनुरूप तय होना चाहिए। जब चीनी नेताओं ने तिब्बत में अल्पसंख्यकों को आतंकित करना शुरू किया तो दलाई लामा के नेतृत्व में हजारों तिब्बतियों को भारत सरकार ने शरण दे दी। साथ ही भारत सरकार ने दलाई लामा से यह भी कहा कि वे भारत में तिब्बत की "निर्वासित सरकार" का कार्यालय खोलना पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु ये प्रतिक्रियावादी अपने भाई-बन्द चीनी नेताओं की भांति दूसरे देशों के मामलों में अपनी टांग अड़ाना अपना जन्मजात अधिकार समझते हैं।

हवा का रुख देखकर भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसाद ने भी उनकी हां में हां मिलाते हुए कहा कि :

"सबसे बड़ी भूल तो वह थी जब तिब्बत को चीन का प्रदेश स्वीकार किया गया था।"

परन्तु अपने राष्ट्रपति काल में डा० साहब ने उस समय की विदेश नीति के खिलाफ कभी उक्त राय प्रकट नहीं की, न ही अपने पद से त्याग-

पत्र दिया और न अपनी स्वीकृति प्रदान करने में कोई आनाकानी प्रकट की।

पं० नेहरू चीनी दुस्साहसवादियों से संघर्ष कर रहे थे और ये कृपलानी, मसानी, जयप्रकाश, राजगोपालाचारी और गोलवाल्कर पं० नेहरू से संघर्ष कर रहे थे।

ऐसे ही अवसर पर चीनी तानाशाहों के स्वर में स्वर मिलाते हुए भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल और वयोवृद्ध प्रगति-विरोधी नेता आदरणीय राजाजी ने फरमाया था :

"चीन के विरुद्ध युद्ध दो व्यवस्थाओं और विचार प्रणालियों के बीच युद्ध है। चीनी हमला साम्यवाद का भारत पर आक्रमण है।

"एशिया में प्रजातन्त्र का भविष्य पश्चिम से एक सकारात्मक समझौते पर ही निर्भर करता है।" (मद्रास १३ नवम्बर, १९६१)

आगे चलकर राजाजी फरमाते हैं :

"हमें बड़े पैमाने पर सभी मित्र देशों से सैनिक सहायता लेनी होगी। हम उनके लिए पैसा नहीं दे सकते हैं, इसीलिए हमें यह सहायता के रूप में लेनी होगी और यह तभी हो सकता है जबकि हम स्वतन्त्र दुनिया के साथ स्थायी गठबन्धन में बंध जायं।"

हमारे राष्ट्र-निर्माता पण्डित नेहरू साम्राज्यवादियों से शस्त्रास्त्र सहायता लेने के लिए तैयार थे। परन्तु वे व्यावसायिक आधार पर ही ऐसा करना चाहते थे। इसके लिए सोना सुलभ करना आवश्यक था ताकि कीमत सोने में भुगतान करके देश की रक्षा के लिए शस्त्र खरीदें। इस नीति का विरोध करते हुए उन्होंने कहा :

"सोना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। हजारों वर्षों से संयुक्त हिन्दू परिवारों में पवित्रता के साथ उसे रखा जाता रहा है। सरकार उसकी छीन-झपट कर रही है। यह सह्य नहीं है।" (पाञ्चजन्य)

इस प्रकार व्यावसायिक आधार पर शस्त्रास्त्रों की खरीद में बाधा

पहुंचाकर ये प्रतिक्रियावादी हिन्दुस्तान को चीनियों के मुकाबिले में निहत्था करना चाहते थे।

परन्तु जब भारतीयों की वीरता और विश्व जनमत के दबाव से चीनी सेनाएं पीछे हटने लगीं और कोलम्बो राष्ट्रों ने दोनों महान् देशों के बीच समझौता वार्ता शुरू की तो ये विरोध करने लगे।

"वास्तविक शान्ति तो चीन पर पूर्ण विजय के बाद ही स्थापित हो सकती थी।"

(श्री गोलवाल्कर)

इनका मकसद बिलकुल साफ था। सरकार के सामने सांप-छछूंदर जैसी स्थिति बनाये रखो, ताकि वह दलदल से न निकल सके, उसकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाये, युद्ध के दावे ऐसे रखो जो कभी पूरे नहीं किये जा सकें, जब सरकार लड़ने चले तो उसे निहत्था कर दो, और जब वह शान्ति-समझौते करना चाहे तो उसे भगोड़ा कहकर अपमानित करो।

इस प्रकार चीनी नेताओं और हिन्दुस्तान के प्रतिक्रियावादियों की अतीत में एक ही रणनीति थी और आज भी वही स्थिति है।

जिस समय हिन्दुस्तान पर आक्रमण करके उन्होंने एशिया में तनाव पैदा किया था, उस समय हम यह आशा करते थे कि संसार के प्रगतिशील जनमत का आदर करके चीनी नेता अपनी समझ को ठीक कर लेंगे। और इसालिए हिन्दुस्तान के तमाम प्रगतिशील लोगों ने, चाहे वे कांग्रेस के अन्दर हों या बाहर, यह नारा लगाया था कि चीन के साथ सम्बन्ध सामान्य किये जायं। परन्तु तमाम प्रतिक्रियावादियों ने इस आन्दोलन की मुखालफत की थी। उनका यह दावा था कि चीन के साथ समझौता नहीं, केवल युद्ध हो सकता है। परन्तु श्री निक्सन की चीन यात्रा के बाद ये तमाग प्रतिक्रियावादी चीन के साथ दोस्ती के लिए बावले हो उठे हैं। आज उन्हें इस बात की कतई याद नहीं है कि चीनियों ने हमारी हजारों वर्गमील भूमि पर कब्जा कर रखा है।

वे हमसे भेड़ मांगते थे !

१९६५ में अमरीकियों और चीनियों ने पाकिस्तानी तानाशाहों को उकसाकर पुनः हिन्दुस्तान पर चढ़ाया। वे यह आशा करते थे कि पण्डित नेहरू की मृत्यु के कारण हिन्दुस्तान अनाथ हो गया है। इन्हें पता नहीं था कि हमारे नेता ने जो अटूट राष्ट्रीय भावनायें और प्रगतिशील चेतना हममें भर रखी है, वह उनकी मृत्यु के बाद भी हमें साहस देती रहेगी और रास्ता दिखाती रहेगी। परिणाम यह हुआ कि चन्द दिनों की लड़ाई के बाद ही पाकिस्तानी सैनिकतन्त्र ताश के महल की तरह भरभरा कर गिरने लगा और भारतीय जनता ने ऐसी जवाबी चोट की कि उसके आका अमरीका तक के पांव उखड़ गये। कातरतापूर्ण लहजे में पाकिस्तानी राष्ट्रपति ने दोनों से—अमरीकी साम्राज्यवादियों और चीनी युद्ध पुजारियों से, सहायता की भीख मांगी। चीनी युद्ध सामन्तों का तो यह साहस नहीं था कि वे पाकिस्तानियों की मदद पर उतरें और हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करदें। वे यह भी नहीं चाहते थे कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान के सामने घुटने टेक दे। इस परस्पर विरोधी चेष्टा को छिपाने के लिए चीनियों ने इस तरह की बकवास करनी शुरू करदी जिससे सारी दुनिया के संजीदा लोगों ने उनका मजाक उड़ाया।

उन्होंने पाकिस्तानी सेना के उखड़े हुए पांवों में दम डालने के लिए भारत सरकार के नाम एक विरोध पत्र लिखा। उसमें कहा गया था :

"हिन्दुस्तानी चरवाहे चीन की ८०० भेड़ें हांक कर ले गये हैं।"

यह सबूत है चीनी नेताओं की सही समझ का ! ८०० भेड़ों के वास्ते ५६ करोड़ लोगों की दोस्ती को कुर्बान किया जा रहा था और दो देशों के बीच जब गर्म लोहा ठण्डा पड़ रहा था तब चीनी नेता उसे उत्तेजना की भट्टी जलाकर गर्म रखना चाहते थे। जिन्दा दिल भारतीय जनता ने इसका सटीक जवाब दिया था। एक दिन हजारों भारतीयों ने

८०० भेड़ें आगे करके चीनी दूतावास के सामने प्रदर्शन किया और चिल्लाकर कहा :

"चीनी नेताओ ! अपनी ८०० भेड़ें वापिस ले लो।"

इस जनसमुदाय में एक व्यक्ति मिट्टी के घड़े में भेड़ का दूध लिये हुए था। उससे किसी ने पूछा, तुम यह दूध क्यों लाये हो? उस व्यक्ति ने हंसकर जवाब दिया :

"चीनी नेता यह शिकायत कर सकते हैं कि भेड़ें तो ले आये हो, इनका दूध कहां है। मैं यह दूध भी साथ ले आया हूं।"

उस दिन पेकिंग का रेडियो इस प्रदर्शन के ऊपर बहुत बौखलाया था। और उसने कहा था :

"८०० भेड़ें चीनी दूतावास में घुसेड़कर तथा दूध का एक मटका फोड़कर हमारा अपमान किया गया है।"

क्या जिन्दादिल भारतीय जनता इन चीनी नेताओं को इसके अलावा कोई दूसरा जवाब भी दे सकती थी ?

बकरे की तीन टांग

सारी दुनिया में बकरे की चार टांगें होती हैं। परन्तु चीनी बकरा तीन टांग का होता है। दुनिया में कोई ऐसा मुल्क नहीं है जिसने कभी कोई भूल नहीं की हो ? संजीदा पार्टियां और मुल्क अपनी भूलों का सुधार कर लेते हैं। परन्तु चीनी युद्ध-पुजारी एक ही राग अलापते हैं। अबकी बार उनके बगलबच्चे पाकिस्तानी याहिया खां ने हिन्दुस्तान पर फिर हमला किया। अपने ही देश के बहुमत जनसंख्या वाले बंगला-देश को कत्लेआम का शिकार बनाया। परन्तु चीनी नेता इतने बहु-रुपिये हैं कि "मुख में राम बगल में छुरी" वाली कहावत सही साबित करते हैं। वे मुंह से चिल्लाकर साम्राज्यवादियों को गाली देते रहे। परन्तु भारतीय जनता और बंगलादेश की वीर जनता का रक्त बहाने

के घृणित काम में साम्राज्यवादियों तथा सैनिक तानाशाहों को हर प्रकार का सहयोग देते रहे।

दुनिया के समझदार लोग यह आशा करते थे कि अब तक की घटनाओं से चीनियों ने कुछ सबक लिया होगा। परन्तु चीनी नेताओं ने जो सबक सीख रखे हैं वे बहुत खतरनाक हैं। वे हैं "कहो कुछ, करो कुछ।" जाप राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का करो, और अमल में उसे खून में डुबोओ, साम्राज्यवादियों को गालियां दो—मगर उन्हीं के सामने दुम हिलाओ, ब्रिटिश साम्राज्यवाद को "मरा हुआ चीता" बताओ परन्तु उसी के कहने पर १९६२ में "हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करो" और हांगकांग को चीते की बलि चढ़ाओ।

ये ऐसे काले सबक हैं जिन पर दूसरे किसी भी सबक का रंग नहीं चढ़ता।

चीन का भारत-विरोध

मैं व्यक्तिगत रूप से भी चीनी क्रान्ति के अनन्य प्रशंसकों में रहा हूं। अभी सितम्बर १९७२ में उत्तरी कोरिया से वापिस लौटता हुआ मैं थोड़े दिनों के लिए चीन रुका था। वहां चीनी नागरिकों से बातचीत करके मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि चीनी नेताओं का भारत-विरोध सतह पर नहीं है बल्कि उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। १९६२ में चीनी हमले के बाद मैं कदाचित् पहला लोकसभा सदस्य था जो चीन गया। चीनी नेताओं की दृष्टि में हिन्दुस्तान का विरोध कितना प्रबल है यह आध घन्टे की चर्चा में ही उभर कर ऊपर आ जाता है। अभी कुछ साल हुए जब चीनियों ने सोवियत संघ के ऊपर कीचड़ उछालना शुरू किया था, हम उसके शिकार बहुत पहले ही हो चुके थे।

जो विश्लेषण ऊपर किया गया है उसके आधार पर यह दावा अतिरंजित नहीं है कि १९६२ में चीनियों की ओर से हिन्दुस्तान पर किया

गया हमला आकस्मिक नहीं था। यदि मैं यह कहूं कि इस हमले के पीछे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विशेष हाथ था और उन्होंने ही चीनी नेताओं को हांगकांग पर हमला करने के बजाय भारत पर हमला करने के लिए उकसाया था तो मेरा यह दावा गलत नहीं है! चीनी नेता इसमें कुछ सीमा तक कामयाब भी हुए। उन्होंने हिन्दुस्तान का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान कम किया, हमारे राष्ट्र निर्माता की मृत्यु को तेजी के साथ उनके नजदीक भेजा और पूरे संसार में गुटनिरपेक्षता की नीति को आंधियों और तूफानों की तरह विश्व की राजनीति पर छा जाने से कुछ वर्षों के लिए रोक दिया।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी विश्व की राजनीति पर गुटनिरपेक्षता और पं० नेहरू के बढ़ते हुए व्यक्तिगत प्रभाव से अत्यधिक भयभीत थे। वे यह अनुभव करते थे कि गुटनिरपेक्षता की नीति पूंजीवादी विश्व-व्यवस्था के अन्दर दरार पैदा कर रही है, विकासशील पूंजीवादी देशों को तेजी के साथ समाजवादी शिविर की ओर धकेल रही है और उनमें यह आत्मविश्वास पैदा करती है कि वह साम्राज्यवादी दबावों का मुकाबिला कर सकें।

यह वह जमाना था जब खुद हमारी कांग्रेस के अन्दर भी ऐसे लोग प्रभावशाली पदों पर आरूढ़ थे जो पं० नेहरू को चीन के साथ दोस्ती करने से रोका करते थे। आज उनमें से बहुत से लोग सिन्डीकेट कांग्रेस और स्वतन्त्र पार्टी के मान्य नेता बने हुए हैं।

और ये ही वे लोग हैं जो पिछले १० वर्षों से चीनी विस्तारवाद को पानी पी-पी कर कोसते थे। पर श्री निक्सन जब से पेकिंग की यात्रा कर आए हैं तब से इनका अलाप एकदम बदल गया है। ये लोग चीनी दोस्ती के राग बड़े जोरों से अलापने लगे हैं। हम चीन के साथ दोस्ती के तब भी पैरोकार थे और आज भी हैं। परन्तु अमरीका की धुन पर नाचने वाले इन प्रतिक्रियावादियों से हम कुछ सवाल पूछना चाहते हैं?

उनके ऊपर कहीं ब्रिटिश जासूसों के इस प्रचार का प्रभाव तो नहीं पड़ गया है कि १९६२ में चीन ने नहीं बल्कि हिन्दुस्तान ने चीन पर हमला किया था ? और यदि यही बात है तो उन्हें खुल कर इस बात की घोषणा करनी चाहिए ?

वे चीन के खिलाफ लड़ाई को और चीनी हमले को उस समय "जनतंत्रीय भारत" पर "साम्यवाद का हमला" कहते थे। तो क्या अब वे चीन को साम्यवादी मुल्क नहीं मानते ?

क्या चीन और अमरीका का गठबन्धन हिन्दुस्तान के खिलाफ अतीत के मुकाबिले अब अधिक खतरनाक नहीं हो गया है ?

क्या अब इन लोगों की नजरों में तिब्बत और दूसरे अल्पसंख्यक प्रदेशों में चीनी नेताओं की ओर से बरपा किया गया आतंक अब निन्दनीय नहीं रह गया है और दलाई लामा अब इनके लिए शहीद नहीं रह गये हैं ? और क्या अब प्रतिक्रियावादी "आचार्यों" को "हिमालय बचाओ" सम्मेलन करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है ?

क्या तिब्बत मुक्त हो गया है ? और भारत के सीमान्त १९४७ के चिन्हों पर पहुंच गये हैं, जिन्हें प्राप्त किये बिना जनसंघी तथा स्वतन्त्राई नेता चीन के साथ दोस्ती का दम भरने लगे हैं ?

यह बात अब अधिकाधिक स्पष्ट हो चुकी है कि हिन्दुस्तान के प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादियों के इशारों पर नाचते हैं।

चीन का उद्देश्य एशिया पर अपना प्रभुत्व थोपना है

जो लोग यह समझते हैं कि चीन के साथ हमारे सम्बन्धों में कूटनीतिक तरीके से सुधार हो सकता है, उनका सोचना निराधार है। चीनी नेताओं का सर्वप्रथम लक्ष्य एशिया पर अपना प्रभुत्व थोपना है। बाकी सब बातें दूसरे स्थान पर हैं। यहां तक कि समाजवाद भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मैं जब सितम्बर में

चीन गया तो मुझे ऐसा कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिससे यह विश्वास हो कि कूटनीतिक आधार पर चीन और भारत मित्र हो सकते हैं। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि दोनों देशों में मैत्री सम्बन्ध तभी कायम हो सकते हैं जब चीन को यह विश्वास हो जाये कि भारत भी चीन जैसी ही महाशक्ति है।

शैतानीपूर्ण कूटनीति

चीनी एक ओर तो विकासशील देशों को सहायता देते हैं या इस के वादा करते हैं व दूसरी ओर जिन देशों के साथ उनका सम्बन्ध हो जाता है वहां तोड़फोड़ करते हैं और यह सब धन्धा इस शैतानीपूर्ण कूटनीति के आधार पर किया जाता है कि वे 'अधूरी क्रान्ति' का काम पूरा कर रहे हैं। इसकी सबसे भौंड़ी मिसाल श्रीलंका और पाकिस्तान हैं। अभी श्रीलंका की प्रधानमन्त्री जब चीन की यात्रा पर गयी थीं तो उनका ऐसा स्वागत किया गया जैसे पिछले लम्बे अरसे से चीन में किसी बड़े नेता का नहीं हुआ। और दूसरी ओर इन्हीं चीनी नेताओं ने श्रीमती भण्डारनायके की सरकार का तख्ता पलटने के लिए बागियों की रुपये-पैसे और हथियारों से पूरी मदद की। पाकिस्तान में चीनी नेताओं ने भारत के खिलाफ सैनिक तानाशाही को हर तरह की सहायता दी और दूसरी ओर चीनियों ने पाकिस्तानी नेताओं के सामने अपना घर व्यवस्थित करने में बेशुमार बाधाएं खड़ी कर दीं। चीनियों का अब आखिरी दांव यह है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच तनाव दूर न हो और इसके लिए वे श्री भुट्टो को हर तरह से उकसाते हैं। दूसरी ओर वे श्री भुट्टो को कमजोर करने के लिए ऐसे दांव-पेंच खड़े कर रहे हैं कि वह किसी एक निर्णय पर न पहुंच सकें। हिन्दुस्तान के साथ उनकी दोस्ती कायम हुए बिना खुद पाकिस्तान का हित नहीं हो सकता। परन्तु उन्हें पाकिस्तान के हित से भी क्या लेना-देना है?

पाकिस्तान पर दबाव

अभी पाकिस्तानी अधिकारी जिस वक्त शिमला समझौते पर अमल करने के लिए हिन्दुस्तान में बातचीत करने आये हुए थे तो एक चीनी उच्चाधिकारी रूमानिया से दौड़े-दौड़े सीधे पेकिंग जाने के बजाय, कराची आये। उनका कराची आना पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के बिना था और इस दौड़-धूप का मतलब शिमला समझौते पर अमल करने से श्री भुट्टो को रोकना था।

जहां तक बंगलादेश का सवाल है, एक अवसर पर इस नये राज्य की बिगड़ती हुई खाद्य स्थिति पर चीनियों नें गहरी चिन्ता प्रकट की। परन्तु साथ ही उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में बंगलादेश के प्रवेश पर निषेधाधिकार का इस्तेमाल किया। चीन में दौरे के समय मुझे यह महसूस हुआ कि चीनी नेता ऐसा हर प्रयास करेंगे जिससे भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान में खटपट बनी रहे।

बंगलादेश के प्रति रुख

कुछ चीनियों ने बातचीत के दौरान मुझे बताया कि उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में बंगलादेश के प्रवेश पर इसलिए निषेधाधिकार का इस्तेमाल किया है कि भारतीय सेनायें अभी भी बंगलादेश में हैं। मैंने उनसे पूछा, हम अपनी सेनायें बंगलादेश में क्यों रखेंगे!

चीनी यह सोचते हैं कि अमरीकी एक न एक दिन एशिया से चले जायेंगे। इसके बाद जो स्थान रिक्त होगा चीनी उसे एशिया में भरना चाहते हैं। इसलिए चीन के जो वास्तविक दुश्मन हैं 'अमरीका और जापान,' अब वे उनके दोस्त बन गये हैं। अब जो चीन में यात्रा करते हुए दिखाई देते हैं वे 'बूढ़ी अमरीकी औरतें और जापानी सौदागर हैं।'

चौधराहट के ये सपने चीनी नेताओं को उनके पुराने दोस्तों का दुश्मन और पुराने दुश्मनों का दोस्त बना रहे हैं।

माओ की बीमारी

कुछ दिन पहले माओ की बीमारी की चर्चा भी चीन में थी। परन्तु माओ त्से-तुंग की मृत्यु से चीन की नीति नहीं बदलेगी। ज्यादातर चीनियों का यह विश्वास है कि माओ के बाद भी माओवाद जिन्दा रहेगा। माओ की व्यक्तिपूजा चीनियों की चौधराहट के सपनों के साथ जुड़ी हुई है। इनमें हिन्दुस्तान और सोवियत संघ शत्रुओं की श्रेणियों में अंकित किये गये हैं। चीनी जनता को यह महसूस कराया गया है कि उन्हें हिन्दुस्तान से खतरा है और उनमें यह भय फैलाया गया है कि हिन्दुस्तान चीन को नुकसान पहुंचाना चाहता है।

निक्सन की यात्रा

सोवियत संघ के साथ चीन के सम्बन्ध गहरी कटुता से भर हुए हैं। चीनियों ने अपनी फौजें उत्तर में लगा रखी हैं। श्री निक्सन की यात्रा के उपरान्त तो चीनियों ने अपनी अधिकांश फौजें दक्षिण से उत्तर में भेज दी हैं। चीन और अमरीका अपने-अपने लक्ष्य पूरे करने के लिए आपस में गले मिले हैं। परन्तु चीनियों ने अपनी जनता को समझाने के लिए नया तरीका ढूंढ़ निकाला है। वे अपनी जनता को समझाते हैं कि अन्त में "निक्सन चीनियों के सम्मुख झुके और पेकिंग आये।"

चीनियों ने एक तंग समाज की रचना की है और अच्छी तरह से मंजे हुए तन्त्र का निर्माण किया है। जनता तो इस तन्त्र में केवल पुर्जा मात्र है। चीनी नेता प्रायः परदे में रह कर काम करते हैं। वे ऐसी कारों में सफर करते हैं जिन पर गोली असर नहीं करती और जिनके शीशों पर काला रंग चढ़ा रहता है। वे केवल राष्ट्रीय पर्वों पर जनता के सम्मुख आते हैं।

मेरी चीन की यात्रा के समय चीनियों ने लिन प्याओ के बारे में बड़ी निन्दा-सूचक शब्दावली का प्रयोग किया। वे लिन प्याओ की व्यक्ति-

पूजा के पीछे अपनी स्थिति मजबूत करना चाहते हैं और अब माओ त्से-तुंग अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अपनी व्यक्ति-पूजा के खिलाफ आन्दोलन कर रहे हैं।

भारत के बारे में अनभिज्ञता

मैंने यह देखा कि चीन में भारत की घटनाओं का वर्णन करने के लिए बहुत से 'कार्यालय' हैं। मैं जब प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारत की महान् उपलब्धियों की चर्चा करता था तो चीनी मुझे बीच में रोक कर पूछते थे, "नेहरू मंच क्या है ?" मैं उत्तर देता कि "नेहरू जी की हमेशा यह इच्छा थी कि चीन के साथ मैत्री सम्बन्ध मजबूत हों और नेहरू फोरम इसके लिए नया मार्ग प्रशस्त करना चाहता है।"

चीनी अधिकारियों ने साम्प्रदायिक समस्याओं के बारे में भी सवाल पूछे। वे कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) को प्रतिक्रियावादी पार्टी कहते हैं।

चीनी अधिकारियों ने इस पर ध्यान दिया कि पेकिंग में श्री निक्सन की यात्रा के बाद हिन्दुस्तान की दक्षिणपंथी पार्टियां, जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी भी चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने की बात करने लगी हैं। हिन्दुस्तान में, जितने भी सोवियत विरोधी तत्व हैं वे चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने की बात करने लगे हैं।

'क्रीज-विहीन' समाज

आज का चीन एक विशाल वर्दीधारी फैशनमुक्त और क्रीज-विहीन समाज है। प्रत्येक व्यक्ति एक ही प्रकार का पहनावा पहिनता है। नीली पैंट और सफेद कमीज। मन्त्री से लेकर मजदूर तक यही एक पहनावा है। ये कपड़े ढीले-ढाले होते हैं जिन पर प्रैस नहीं की जाती

है। स्त्रियां किसी प्रकार का शृंगार नहीं करतीं। उनके पास कोई गहना नहीं होता, सोने की अंगूठी और मेख तक नहीं। यह सब जीवन को सादा बनाने के नाम पर किया जाता है। चित्रों और पोस्टरों में कामोत्तेजना नहीं होती। इसके बावजूद चीन की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। परिवार नियोजन को वहां कोई सफलता नहीं मिल रही है।

चीनी राज्य ने गरीबी पर विजय हासिल नहीं की। परन्तु जीवन की आवश्यकताएं सुलभ की जा चुकी हैं। सफाई पर यहां विशेष ध्यान दिया जाता है। मैंने चीन में कहीं मक्खियां नहीं देखीं।

श्रम को गौरव प्रदान किया जाता है। मैंने बहुत से साइकिल रिक्शा देखे हैं। मगर उनमें माल ढोया जाता है, आदमी नहीं।

पढ़ने की आदत बढ़ रही है

चीन में पढ़ने की आदत बढ़ रही है। चीनी समाचार-पत्र बड़ी संख्या में पढ़े जाते हैं। परन्तु कुछ पत्र तो केवल चीनियों के लिए ही निकाले जाते हैं। विदेशी कूटनीतिज्ञों और चीन में रहने वाले विदेशियों को वे पत्र नहीं दिये जाते हैं।

ये चीनी पत्र भारतीय समाचार-पत्रों से बहुत-सी आलोचनात्मक सामग्री लेकर छापते हैं जिससे कि भारत सरकार की प्रतिष्ठा घटे।

चीनियों ने अपना औद्योगिक आधार मजबूत किया है। उनका तेल उत्पादन काफी बढ़ गया है। उन्होंने जीवनोपयोगी वस्तुओं के दाम अच्छी तरह से नियंत्रण में किये हैं। चिकित्सा प्रणाली काफी आसान है। पुरानी जड़ी-बूटियों और आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को मिलाकर रोग का उपचार किया जाता है और यह सुविधा गांवों तक में है। तुच्छ अपराध खत्म हो गये हैं। भाग्यवक्ता चीन में नहीं रहे। हालांकि कुछ दिन पहले तक वे बहुत तादाद में थे। चीनी क्रान्ति ने भविष्यवक्ताओं का बन्टाधार कर दिया है।

एक ही भाषा

चीन को यह सुविधा प्राप्त है कि वहां एक ही भाषा है। परन्तु उत्तर और दक्षिण की पुरानी शत्रुता अभी तक चल रही हैं। सरकार दक्षिण से उत्तर में और उत्तर से दक्षिण में जनसंख्या की अदला-बदली करती रहती है, ताकि दोनों क्षेत्रों की जनसंख्या में सद्‌भावना बढ़े।

हम चीन विरोधी नहीं हैं

हमारे शिक्षक और नेता पं० नेहरू उदार और प्रगतिशील राष्ट्रवादी थे। उन्होंने हमें घृणा के ऊपर चलना नहीं सिखाया। उनकी यह इच्छा थी कि हिन्दुस्तान बिना रक्तपात किये शान्तिपूर्ण जनतंत्रीय प्रणाली से समाजवाद की ओर अग्रसर हो। निश्चय ही इस प्रयोग में बहुत से खतरे अन्तर्निहित थे और नया प्रयोग होने के कारण बहुत-सी विफलतायें मार्ग में आकर खड़ी हो सकती थीं और हुई भी। परन्तु इस दीर्घकालीन प्रगतिशील राष्ट्रीय कायाकल्प के लिए भारत की सीमाओं पर तनाव का न होना, तथा शान्तिपूर्ण वातावरण का बना रहना बहुत जरूरी था। इस लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए पं० नेहरू ने चीन और रूस के साथ मित्रता कायम करना अपनी विदेशी नीति का ध्रुव आधार निश्चित किया।

उन्हें यह विश्वास था कि चीनी नेता लेनिनवाद का जाप करते हैं, पंचशील के सिद्धान्तों की घोषणा करते हैं और उनको रियायतें देना खुद हिन्दुस्तान के शान्तिपूर्ण विकास के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। पं० नेहरू ने चीनियों की उत्सुकता और आग्रहपूर्ण मांग को स्वीकार करते हुए तिब्बत के सवाल पर चीनियों के दावे स्वीकार कर लिये थे। उस समय तक लहासा पहुंचने का चीनियों के पास कोई राजमार्ग नहीं था। कलकत्ता और कालिगपोंग हो कर चीनी सैनिक और सामान तिव्वत पहुंचता था। इस सुविधा का लाभ उठा कर चीनियों ने कालि-

गपोंग के रास्ते से तिब्बत में एक विशाल शस्त्रागार और सैनिक छावनी का निर्माण कर लिया। सामान और सेना बड़ी मात्रा में इकट्ठे करने के बाद चीनियों ने तिब्बत में मारकाट शुरू कर दी। इसके बाद तिब्बत से शरणार्थियों के काफिले हिन्दुस्तान की ओर दौड़ पड़े। इस बीच चीनियों ने अक्साई चीन नाम के भारतीय क्षेत्र में सड़क बनानी शुरू कर दी, नेफा पर उनकी आंखें गड़ गईं और चीन की भारतीय प्रदेशों पर दूषित आकाक्षायें बाद में उनके भौगोलिक मानचित्रों में प्रकट होने लगीं। उन्होंने धीरे-धीरे हमारे भौगोलिक क्षेत्रों पर सैनिक अतिक्रमण शुरू कर दिये। पुराने जमाने में चीनियों की पांच अंगुलियां गिनाई जाती थीं। वे थीं, कोरिया, वियतनाम, मलाया, बर्मा और नेफा। ये पुराने चीनी दावे फिर से दोहराये जाने लगे कि कब-कब ये इलाके चीनी सामन्तों और सम्राटों के अधिकार में थे।

तो क्या अब हम चीन से दोस्ती के नाम पर इन पांचों भूभागों को चीनियों की अंगुलियों के नीचे दब जाने दें? और यदि हम ऐसा कर भी दें तो क्या विश्वास दिलाया जा सकता है कि आगे चलकर ये पांच अंगलियां दस नहीं हो जायेंगी और कल चीनी नेता भारत के अन्य भागों पर अधिकार करने के दावे नहीं करने लगेंगे?

चीनी षड्यंत्रकारियों ने साम्राज्यवादियों से गठबन्धन करके और पश्चिमी जर्मनी के सैनिक सत्ताधारियों से घुलमिल कर परमाणु बम का विस्फोट किया ताकि गुटनिरपेक्ष देशों को आंतकित कर सकें, और पूरे संसार के वामपक्षी तथा जनवादी आन्दोलन में फूट डाली ताकि साम्राज्यवाद की सेवा कर सकें।

पं० नेहरू के व्यक्तित्व और विचारधारा को साम्राज्यवादियों ने और चीनी नेताओं ने अपने विस्तारवादी मन्सूबों के रास्ते में हमेशा ही बड़ी बाधा समझा है।

परन्तु हमारा प्रगतिशील राष्ट्रवाद पं० नेहरू की मृत्यु के साथ

नहीं मर गया है। हम चीनी षड्यंत्रों का विरोध करते हैं और करते रहेंगे। परन्तु साथ ही हम चीनी जनता के साथ अपने हजारों साल पुराने पारम्परिक सम्बन्धों को भूले नहीं हैं। हमारा यह अटल विश्वास है कि चीन की क्रान्तिकारी जनता इन षड्यंत्रकारियों की असलियत किसी दिन अच्छी तरह समझ लेगी और इनका वही हस्र होगा जो अब तक के तमाम षड्यंत्रकारियों का हुआ है।

इतिहास जब करवट बदलता है तो वे किसी भी अध्यक्ष, सैनिक तानाशाह और षड्यंत्रकारी के मुकाबिले अधिक भयानक और प्रभावशाली मोड़ लेता है।

अध्याय तीन

विश्व के प्रगतिशील आन्दोलन में तोड़फोड़

कुछ लोग यह समझते हैं कि अमरीका और चीनी नेताओं के बीच यह गठबन्धन आकस्मिक है और इस का कोई राजनीतिक कारण नहीं है। परन्तु यह गठबन्धन न तो आकस्मिक है और न बिना सोचे-समझे है। यह धारणा अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है और दुनिया के सभी समझदार लोग यह मानने लगे हैं कि चीनी नेता एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी गिरोह में शामिल हो गये हैं। चाहे पश्चिमी एशिया हो, या पूर्वी एशिया, पश्चिमी यूरोप हो या दक्षिण-पूर्वी एशिया, सभी स्थानों पर ये प्रतिक्रियावादी सरकारों के साथ गठबन्धन कर रहे हैं। साम्राज्यवाद का विरोध करने का जो "हनुमान चालीसा" वे पढ़ा करते थे, उसका उनकी राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और अब तो वे मुक्ति आन्दोलनों की बनावटी पैरवी करने का ढोंग भी छोड़ते जा रहे हैं।

अब वे पश्चिमी एशिया में आम तौर पर प्रतिक्रियावादी सरकारों और सामन्तशाहों के साथ सम्पर्क बढ़ा रहे हैं। कल तक वे प्रगतिशील पार्टियों, नेताओं और गुटों के साथ सम्बन्ध जोड़ा करते थे। परन्तु अब वे सरकारों के साथ सम्पर्क बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। पश्चिमी एशिया में बेरूत और तेहरान उनके विशेष केन्द्र बनते जा रहे हैं। और जब से सीरिया के साथ इजरायल का तनाव बढ़ा है तब से बेरूत

चीनियों के लिए और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

तेहरान यद्यपि सैन्टो सन्धि का सदस्य है, परन्तु वह शायद इसीलिए चीनियों को अधिक पसन्द आता है।

पश्चिमी एशिया में आजकल चीनी लोग विशेष दौड़-धूप कर रहे हैं। और वे एशिया तथा अफ़्रीका के देशों में अधिक दिलचस्पी के साथ डोरे डालते फिरते हैं। इसका मूल कारण अमरीकी साम्राज्यवाद को पश्चिमी एशिया से उखाड़ फेंकना नहीं बल्कि पश्चिमी एशिया में इजरायल के आक्रमण तथा अमरीकी साम्राज्यवादियों की घुसपैंठ के खिलाफ संघर्षरत जनता के आन्दोलनों को कमजोर करना है। इसके लिए वे इन देशों में सोवियत संघ और भारत के प्रभाव को कम करना चाहते हैं। लीबिया और सूडान में घोर-प्रगतिविरोधी सामन्ती सरकारें हैं। इन सरकारों को समाजवादी प्रभाव के खिलाफ इस्तेमाल करने के लिए चीनी नेताओं ने उन्हें विशेष रूप से अपने प्रभाव में ले लिया है।

जापान के साथ चीनी नेताओं के जो गहरे सम्बन्ध हो रहे हैं उस पीछे भी अमरीकी साम्राज्यवाद ही मूल प्रेरक है।

यद्यपि यह सही है कि आज भी चीनी रेडियो अमरीकी साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रचार करता रहता है। परन्तु अमरीकी साम्राज्यवाद और चीनी माओवाद में चलने वाला मौखिक संघर्ष ठीक उसी तरह का है जैसे वियतनाम पर भीषण बम वर्षा और शान्ति वार्त्ता साथ-साथ चलती रही हैं। मूल रूप से इन दोनों के हित एक-दूसरे में समाते जा रहे हैं। अमरीकी साम्राज्यवाद यह जानता है कि अन्त में उसकी कपालक्रिया राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की सफलता और समाजवादी शिविर के जरिये ही होनी है। सोवियत संघ समाजवादी शिविर का नेता है। इसीलिए अमरीकी साम्राज्यवाद उसे चारों ओर से घेरने की कोशिश करता रहा है। परन्तु आज के महाशक्तिशाली प्रक्षेपणास्त्रों

के युग में भौगोलिक घेराबन्दी उतना महत्त्व नहीं रखती, जितना पहले रखती थी। इसीलिए अमरीकी साम्राज्यवाद को ऐसे मददगार की जरूरत थी जो राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में तोड़फोड़ कर सकता हो, सोवियत संघ और भारत के नेतृत्व को चुनौती दे सकता हो तथा नये स्वाधीन राष्ट्रों के आर्थिक विकास में तोड़फोड़ करके इस पूरी साम्राज्य-विरोधी शक्ति को कमजोर कर सकता हो। चीन के माओवादियों ने इस काम के लिए उन्हें अपनी सेवायें प्रस्तुत कर दी हैं। चीनी माओ-वाद और कुछ नहीं है बल्कि त्रात्सकीवाद का आधुनिक चीनी संस्करण है। अब तक का, त्रात्सकीवाद का लम्बा इतिहास इसका साक्षी है कि अपनी गर्म-गर्म लफ्फाजी के बावजूद त्रात्सकीवाद अन्त में प्रतिक्रिया-वादी पूंजीपतियों, सामन्तशाहों और साम्राज्यवादियों के हाथों का हथियार बन जाता है। पिछले ४० वर्षों से त्रात्सकीवाद ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में कहीं भी कोई योगदान नहीं दिया है और समाजवादी शिविर के खिलाफ तोड़फोड़ तथा षड्यन्त्र करने में सी० आई० ए० ने उसे खूब इस्तेमाल किया है। आज इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए चीनी नेताओं ने अपने आपको सी० आई० ए० का स्वयंसेवक बनाया है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापान को कुछ रियायतें देकर इस गुट में ामिल किया जा रहा है। बाद में इस गुट में पाकिस्तान, ईरान, तुर्की ौर अन्य अरब राष्ट्रों को शामिल करने की योजना है।

रणनीतिक सहयोग

दूसरे महायुद्ध की परिसमाप्ति के बाद और एक के बाद दूसरे देश में साम्राज्यवादी दासता के बन्धन टूटने की तेज प्रक्रिया चालू होने के बाद पूरे संसार में दो समानान्तर रणनीतियों का उदय हुआ। इनमें से एक थी तनाव कम करने की, विश्व शान्ति की रक्षा की, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की और एकदूसरे के आर्थिक विकास में

पारस्परिक सहयोग की। पूरे संसार के प्रगतिशील जनमत की एक प्रमुख मांग यह थी कि "परमाणु परीक्षण" बन्द करो। यह रणनीति नये स्वाधीन राष्ट्रों, गुटनिरपेक्ष देशों और समाजवादी शिविर की थी।

इसके मुकाबिले में जो दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय रणनीति थी उसका मकसद था, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बिगाड़ना, तनाव पैदा करना, अशान्ति फैलाना और पारस्परिक अविश्वास तथा अशान्ति के बीज बोना। परमाणु परीक्षण चालू रखना इस रणनीति का बाहरी रूप था।

सोचना यह है कि पिछले २३ वर्षों में जब से चीन में माओवादियों के हाथों में सत्ता आई है उन्होंने कौनसी रणनीति का अनुसरण किया है और आज भी वे क्या कर रहे हैं?

पूरे संसार के जनमत का आदर करते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने परमाणु बमों के तीन प्रकार के परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाने की, कीटाणु फैलाने वाले और विषैले हथियारों का आविष्कार रोकने की और आम निःशस्त्रीकरण करने की नीति का प्रतिपादन किया है। परन्तु चीनी नेता इसके खिलाफ आचरण करते हैं। निःशस्त्रीकरण करने के बारे में पेकिंग के नेता उस अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी पाबन्दी से बचना चाहते हैं जो भविष्य में उनकी सैनिक योजनाओं में अड़चन पैदा कर सकती है। चीन में बड़े पैमाने पर हर समय फौजी तैयारियां होती रहती हैं। चीन की स्थायी सशस्त्र सेनाओं में लगभग ४० लाख हथियारबन्द सैनिक हैं। डेढ़ करोड़ से अधिक वे हथियारबन्द लोग इसमें शामिल नहीं हैं, जिन्हें जनवादी स्वयंसेवक कहा जाता है। उपलब्ध सूचना के अनुसार चीनी सेना के पास ४,००० लड़ाकू विमान, ३० से अधिक पनडुब्बियां, ३०० से अधिक विध्वंसक तथा विस्फोटक बटोरने और डुबो देने वाली नौकायें मौजूद हैं। चीन की जनमुक्ति सेना में फौजी दस्तों का वितरण भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इसकी पैदल सेना के १२ सम्भाग चीन की दक्षिणी सीमा के तात्कालिक इर्द-गिर्द इलाके में जमे हुए हैं। वे वुहान-कैन्टन रेल

मार्ग के साथ-साथ २५ से अधिक सम्भागों में इस प्रकार बंटे हुए हैं कि कुछ ही घन्टों में उन्हें दक्षिण की ओर पहुँचाया जा सकता है। ये तथ्य पेकिंग के सामरिक नीतिज्ञों की दूरगामी योजनाओं को स्पष्ट रूप से प्रकट कर देते हैं कि वे कहां से बचने की और किस ओर हमले करने की तैयारियों में लगे हुए हैं। अपने बजट का ४० प्रतिशत से अधिक खर्चा वे फौजी मदों पर करते हैं और परमाणु प्रक्षेपणास्त्रों का निर्माण करना उनकी प्रमुख रणनीति है।

चीनी नेता जब परमाणु परीक्षण करते हैं तो इसका यह आशय नहीं है कि चीन को किसी ओर से 'परमाणु युद्ध' का खतरा उत्पन्न हो गया है या चीन के आर्थिक विकास में ऐसी मंजिल आ गई है कि इन महंगे प्रयोगों के लिए उसके बजट में जरूरत से ज्यादा गुंजायश है। और न इसका यही अर्थ है कि चीनी अर्थ-व्यवस्था इतने खर्चीले प्रयोग करने के लिए तैयार हो गई है। इसका लक्ष्य नये स्वाधीन एशियाई राष्ट्रों तथा अफ्रीकी देशों पर अपनी चौधराहट का सिक्का जमाना है। और उनकी यह धारणा बन चुकी है कि परमाणु एवं उद्जन बमों का परीक्षण करके चीनी नेताओं के एशिया पर नेतागीरी थोपने के तथा अपना विस्तार करने के सपने साकार हो सकते हैं।

मानचित्रीय आक्रमण

पिछले कई वर्षों से पेकिंग में ऐसे भोगोलिक प्रकाशनों की भरमार होती जा रही है जिससे दूसरे मुल्कों की क्षेत्रीय अखण्डता एवं प्रभुसत्ता के बारे में भ्रम पैदा होते हैं। इनका संकलन इस तरह किया जाता है कि या तो धीरे-धीरे दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों पर चीनी अपना दावा थोप सकते हैं और या फिर वहां के जनगणों में पारस्परिक वैमनस्य पैदा किया जा सकता है। अभी-अभी पेकिंग में ऐसा ही एक संकलन प्रकाशित हुआ है जिससे यह समझना कठिन है कि सिंहापुर एक प्रभुसत्ता

सम्पन्न गणतन्त्र है या कि आकार-प्रकारहीन कोई भौगोलिक इकाई। मलेशिया संघ को "चीनी मानचित्र" पुस्तिका में जान-बूझकर मलाया बताया गया है। अभी-अभी ल्यू पेई हुवा की एक पुस्तक "आधुनिक चीन का संक्षिप्त इतिहास" प्रकाशित हुई है जिसमें बर्मा, थाईलैंड, नेफा और भारत के अन्डमान द्वीप तथा असम प्रदेश, काश्मीर का एक बड़ा हिस्सा——तथा सोवियत संघ का साइबेरिया क्षेत्र एवं मंगोलिया का बहुत बड़ा क्षेत्र चीनी गणतन्त्र के भाग बन गये हैं। एक दूसरी पुस्तक में बर्मा का बड़ा हिस्सा चीनी क्षेत्र बन गया है। "चीन सचित्र" में एक बार ऐसा मानचित्र दिया गया था जो भूटान की ओर चीनी सीमा का संकेत करता था।

पेकिंग के नेता जिस नीति पर चल रहे हैं, इसे चीनी सम्राटों की 'शानसी' नीति कहा जाता है। शानसी का अर्थ यह होता है कि चीन को अपने पड़ोसियों की भूमियां हड़प लेने का अधिकार स्वयं सर्वोच्च ने ही दे दिया है, जिस तरह "रेशम का कीड़ा शहतूत के पत्तों को चट कर जाता है", यद्यपि यह कीड़ा अपना काम धीरे-धीरे धीरज के साथ करता है। जाहिर है कि पेकिंग के राजनीतिज्ञ और भूगोलवेत्ताओं ने सर्वोच्च नेता माओ त्से-तुंग के आदेशों से समुचित नतीजे निकाल लिये हैं।

हमारा यह कथन हमारी मनोगत भावनाओं पर आधारित नहीं है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व चीनी सामन्ती कानून के कुछ सिद्धान्तों से प्रभावित है और इस पार्टी के नेता यह अनुभव करते हैं कि वे चीन पर शासन करने वाले तमाम राजवंशों के, यहां तक कि मंचू राजवंश के भी कानूनी उत्तराधिकारी है। "सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभव के कुछ और सबक" नामक लेख में जोकि १९५६ में **'जेन मिन जिहपाओ'** नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था, कहा गया है कि :

"हम चीनियों को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि आन, तान,

मिन और चिन राजवंशों के शासन काल में हमारा देश ही एक महान साम्राज्य था।" सन् १९६० के आस-पास चीनी इतिहासकारों ने उन व्यक्तियों को भी चीन का पुरखा बता कर प्रशंसा करनी शुरू कर दी जिन्होंने दूसरे देशों पर हमले और नरसंहार किये थे। इस सम्बन्ध में चंगेज खां की विशेष प्रशंसा की गई थी। १९६२ में एक प्रमुख चीनी इतिहासकार ने लिखा था :

"क्षेत्र विस्तार को आक्रमण की संज्ञा देना, दुर्बल और मरणशील जनगण को आक्रमण का शिकार बनाना और उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना गलत है। सबल राष्ट्र या राज्य द्वारा विस्तार करने की दिशा में उठाये गये कदम सम्बन्धित युग के सामाजिक विकास के नियमों के अनुकूल हो गये हैं।" (शिनसानत्से १९६२, अंक १, पृष्ठ ६२)।

इस प्रकार सामन्ती चीन की परम्परागत विदेश नीति मुख्यत: विस्तारवादी आकांक्षाओं पर आधारित थी। और उन्हीं परम्पराओं पर चलने वाले चीनी नेता आज भी चीनी प्रभाव का विस्तार करना सिद्धान्तहीन नहीं मानते बल्कि इसे वे अपने वभव का प्रतीक समझते हैं। ये नेता परम्परागत रूप से यह अनुभव करते हैं कि किसी क्षेत्र में चाहे कोई भी जनगण क्यों न रहते हों, यदि अतीतकाल में कभी भी वहां चीनी सम्राटों का प्रभुत्व रहा है तो उन्हीं की परम्पराओं पर चलने वाले चीनी नेता उन क्षेत्रों पर पुन: अधिकार जमाना समाजवादी चीन के लिए भी पवित्र कर्त्तव्य समझते हैं।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का विध्वंस

पूरे संसार के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों, समाजवादी शिविर, मजदूर आन्दोलनों और प्रगतिशील संस्थाओं में तोड़-फोड़ शुरू करने से पहले चीनी नेताओं ने अपनी आतंकवादी परम्पराओं के अनुसार सबसे पहले चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का विध्वंस किया।

का० लेनिन की शिक्षाओं के अनुसार प्रत्येक देश की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक गतिविधियों का और वर्गीय हितों का मूल्यांकन करती है तथा क्रान्ति की एक विशेष मंजिल पर अपने लक्ष्य का निर्णय करते हुए कार्यक्रम बनाया करती है। यह कार्यक्रम पार्टी को भटकावों से रोकता है, पार्टी में विजातीय प्रवृत्तियों को उभरने से और जन्म लेने से रोकता है तथा पार्टी अपने कार्यकर्त्ताओं को एक निश्चित लक्ष्य की ओर संयुक्त होकर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। का० लेनिन ने कहा है कि पार्टी कार्यक्रम ऐसा ध्रुवतारा होता है जो पार्टी को एक रखता है तथा सामूहिक रूप से एक निश्चित दिशा में सभी की शक्ति को केन्द्रित करता है। इससे पार्टी की प्रहारक क्षमता में तेजी आती है।

लेनिन का जाप करने वाले चीनी नेताओं ने सबसे खतरनाक काम यह किया है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के पास कार्यक्रम नाम की कोई सैद्धान्तिक वस्तु नहीं छोड़ी है। उसने १९२२ की दूसरी पार्टी कांग्रेस में जो घोषणा-पत्र स्वीकार किया था तब से अब तक पूरी स्थिति ही बदल गई है और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी स्वयं भी उसे अब पार्टी कार्यक्रम नहीं मानती। तो यह प्रश्न उठता है कि यदि सही अर्थों में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी लेनिनवादी पार्टी होती तो क्या वह इस स्थिति को सहन कर सकती थी।

इसके अलावा, जून १९६५ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या का सामाजिक गठन इस प्रकार का था :

"मजदूर १४ प्रतिशत, बुद्धिजीवी ११·७ प्रतिशत, किसान ६९·१ प्रतिशत, और फुटकर सामाजिक वर्ग ५·२ प्रतिशत।"

इस प्रकार, मजदूर वर्ग की संख्या केवल १४ प्रतिशत है। इस वर्गीय आधार का विश्लेषण करने पर कोई भी व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि जिस कम्युनिस्ट पार्टी का वर्गीय आधार ८६ प्रति-

शत गैर मजदूर (गैर सर्वहारा) हो और जिस पार्टी के पास तूफानों के थपेड़ों में थाम कर रखने के लिए मजबूत सैद्धान्तिक आधार के रूप में पार्टी कार्यक्रम भी न हो, उस पार्टी को खतरनाक भटकावों का शिकार होने से कौन रोक सकता है। चीन में हुआ भी यही।

अर्थ-व्यवस्था में कार्यकर्त्ताओं को दुस्साहसिक प्रवृत्तियों से विमुख करने के लिए तथा त्रात्सकीवादियों को उत्तर देते हुए समाजवाद के संस्थापक का० लेनिन ने कहा था :

"अगर कोई कम्युनिस्ट यह सपना देखता है कि वह तीन साल में आर्थिक आधार शिलाओं का पुर्ननिर्माण करने, निम्न कृषि की आर्थिक जड़ों का कायाकल्प करने, में सक्षम है तो वह निस्सन्देह दिवास्वप्नद्रष्टा है।" (संगृहीत रचनायें, खण्ड ३२)।

उन नये स्वाधीन राष्ट्रों को अथवा उन राष्ट्रों के लिए जहां समाजवादी पुनर्रचना का कार्य शुरू किया जाना है, दुस्साहसिक उछल-कूद से रोकने के लिए का० लेनिन की यह बहुमूल्य चेतावनी थी।

१९५६ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं कांग्रेस ने का० लेनिन की इस चेतावनी को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित घोषणा की :

"कृषि उत्पादक सहकारिता के विकास की प्रक्रिया में छोटी सहकारिताओं को बड़ों में बिना सोचे-समझे मिलाने का कार्य रोकने के बारे में सावधानी बरती जानी चाहिए, ताकि आर्थिक प्रबन्ध एवं उत्पादन संगठन के कार्य में कठिनाइयों को तथा कृषि पर पड़ने वाले उनके प्रतिकूल प्रभावों को टाला जा सके।"

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर महत्वशाली स्थानों पर जमे हुए त्रात्सकीवादियों को सावधान करते हुए विश्वविख्यात कम्युनिस्ट नेता का० ल्यू शाओ ची ने आर्थिक क्षेत्र में दुस्साहसवादी प्रवृत्तियों से चीनी जनता और कम्युनिस्ट पार्टी को सावधान किया।

परन्तु माओवादी इस पार्टी कांग्रेस में चुप बैठ कर षड्यन्त्र करते रहे। फिर भी वे अवसर की तलाश में रहे और चीनी समाचार-पत्रों में हाल में प्रकाशित दस्तावेजों से पता चलता है कि लूसान में अगस्त १९६४ में आयोजित आठवें पूर्णाधिवेशन में माओ त्से-तुंग का 'लम्बी छलांग' और 'कम्युनीकरण' का प्रस्ताव प्रायः अस्वीकार कर दिया गया और इस अधिवेशन में यह फैसला किया गया था कि 'जन कम्यून' अपनी सम्पत्ति को उत्पादन जत्थों के 'हवाले' कर दें। जन-कम्यूनों को सहकारी समितियों के आधार पर पुनर्गठित करने की योजना बनाई गई थी। इसमें सन्देह नहीं है कि आठवें पूर्णाधिवेशन तक भी माओ-वादियों का चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में बहुमत नहीं था। पार्टी से अपनी लाइन मन्जूर करवाने के लिए इस अधिवेशन में उन्होंने घोर संघर्ष किया था। जिन नेताओं ने माओ त्से-तुंग की लाइन की घोर आलोचना की थी, उनमें प्रमुख थे, मार्शल पेंग ते हुवाई जो अपने जमाने में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के प्रख्यात सिद्धान्तशास्त्री, पोलिट-व्यूरो के सदस्य, विश्वविख्यात सैनिक मामलों के विशेषज्ञ, कोरिया-युद्ध के विजेता और चीन के रक्षा मन्त्री। दूसरे थे चांग वेन तियेन, जो पोलिटव्यूरो के वैकल्पिक सदस्य तथा उपविदेश मन्त्री थे। बाद के दस्तावेजों से पता चलता है कि का० ल्यू शाओ ची तथा जनरल जू दे भी इसी लाइन के समर्थक थे। इसके अलावा, चेन युन जो चीनी कम्यु-निस्ट पार्टी में प्रमुख आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ माने जाते थे, इसी लाइन के समर्थक थे।

पूर्णाधिवेशन की परिसमाप्ति के उपरान्त माओवादियों ने पूरे देश के स्तर पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अधिकृत लाइन के खिलाफ साजिशें शुरू कीं।

उन्होंने मुख्य नारा दिया, चीन का आर्थिक विकास तीन साल में किया जा सकता है, पूरे चीन में सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण किया जा

सकता है, राष्ट्रीयकरण अर्थात् राजकीय सम्पत्ति और समाजवादी सम्पत्ति एक ही चीज है, तीन साल मेहनत करो और हजार साल ऐश करो।

इन नारों के आधार पर उन्होंने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में तोड़-फोड़ शुरू कर दी; किसानों को यह कह कर उकसाया गया कि केवल तीन साल में चीन समृद्ध और ताकतवर राष्ट्र बन सकता है। किसानों को मजबूर किया गया कि वे अपनी जमीनें जन-कम्यूनों को दे दें। परन्तु इस लाइन पर चलने से पहले कम्युनिस्ट पार्टी का विध्वंस करना जरूरी हो गया था।

इसके लिए उन्होंने सबसे पहले उन पार्टी नेताओं को, जो विशेष रूप से मजदूर वर्ग में से आये थे, अपदस्थ करना शुरू किया। इसके लिए कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की बैठकें बुलाना असम्भव कर दिया गया। जो अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी शिविर के समर्थक थे, उन्हें संशोधनवादी, सुधारवादी, आदि कह कर बदनाम किया गया। मार्शल पेंग ते हुवाई को अपने पद से मुक्त किया गया। का० चांग वेन तियेन अपने पद से हटा दिये गये तथा चेन युन जो आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ थे, उन्हें योजना आयोग से मुक्त कर दिया गया।

इससे भी जब काम नहीं चला तो 'पूरे चीन में क्रान्ति के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है,' यह शोर मचा दिया गया। लाखों लोगों को उकसाया गया और उन्हें कहा गया कि क्रान्ति खतरे में है, कम्युनिस्ट पार्टी में पूंजीपतियों के दलाल घुस आये हैं, ल्यू शाओ ची साम्राज्यवाद का पुराना दलाल है, इत्यादि।

लाखों-करोड़ों युवक हाथ में लाठी, भाले और बल्लम लिये हुए क्रान्ति की रक्षा के नाम पर सड़कों पर उतार दिये गये। पूरे चीन का रेल-विभाग और यातायात के दूसरे साधन उनके सुपुर्द कर दिये गये, वे बिना टिकट चाहे जहां आ जा सकते थे। उनके मुफ्त

खाने की व्यवस्था सरकारी खजाने से की जाती थी। वे अपने नायकों के नेतृत्व में उन स्थानों पर धावे बोलते थे जिनकी ओर उनके नायक संकेत करते थे। कम्युनिस्ट पार्टियों के दफ्तरों में आग लगाई जाती थी। पुराने और सम्मानित क्रान्तिकारियों को धकेल-धकेल कर चौराहों पर खड़ा किया जाता था और उनसे अपने अपराध मंजूर करवाये जाते थे। ये वयोवृद्ध क्रान्तिकारी माओ त्से-तुंग की विचारधारा के प्रति शपथ लेने के लिए मजबूर किये जाते थे। पूरे चीन में एक छोर से दूसरे छोर तक सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम से इन छोकरों के टिड्डी दल चीन में अराजकता और सर्वनाश का बीजारोपण करते फिर रहे थे।

चीन के विश्वविख्यात बुद्धिजीवी लेखक, कलाकार, चित्रकार, कवि, सम्पादक और दार्शनिक; जो माओ त्से-तुंग की सैद्धान्तिक धारणाओं के विरोधी थे, उनकी प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा और जीवन इन अराजक छोकरों के सुपुर्द कर दिया गया था। इनमें बहुत से लोगों ने अपमान सहन न कर सकने के कारण आत्म-हत्यायें कर लीं और बहुत से बुद्धि-जीवियों ने माओ त्से-तुंग के सामने अपमानित होकर आत्मसमर्पण करने के बजाय इन लाल प्रहरियों, जो एक प्रकार के पाकिस्तानी रजाकार थे, के हाथों मर जाना मंजूर किया।

बहुत कम लोगों को यह पता है कि अपनी व्यक्ति-पूजा शुरू कराने से पहले माओ त्से-तुंग गुट को कम्युनिस्ट पार्टी की क्रान्तिकारी परम्पराओं तथा नेताओं का उन्मूलन करना पड़ा था। यह भी पता चला है कि चीन के भूतपूर्व विदेश मन्त्री और विख्यात नेता स्वर्गीय चेन यी ने माओ त्से-तुंग की गलत प्रवृत्तियों के सामने सिर झुकाने से मना कर दिया था।

इस रहस्य का उद्घाटन रैड गार्ड्स (लाल रजाकारों) की एक संक्षिप्त पुस्तिका में हुआ है जिसके उद्धरण पोलैंड की एक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। इन लाल रजाकारों ने जब स्वर्गीय विदेश मन्त्री को

अपमानित करना शुरू किया तो उन्होंने कहा :

"तुम मेरा सिर गर्दन से अलग कर सकते हो, तब भी मैं सच ही कहूंगा।" उन्होंने स्वयं इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा कि १९२८ और १९२९ में भी वह माओ त्से-तुंग की नीति के खिलाफ थे।

उन्होंने दावा किया कि म कम्युनिस्ट हैं। हम व्यक्ति-पूजा में यकीन नहीं करते। अध्यक्ष माओ त्से-तुंग एक साधारण आदमी ही हैं।

जिस समय लाल रजाकारों ने उन्हें बेरहमी के साथ पीटना शुरू किया, उस समय मार्शल चेन यी उन छोकरों की ओर नाटकीय ढंग से मुड़े और बोले :

"क्या तुम सब बागी हो? तुम किसके खिलाफ बगावत करते हो? क्या मेरे खिलाफ, आगे बढ़ो और जो चाहो मेरे साथ करो! क्या कारण है कि तुम साम्राज्यवाद के खिलाफ बगावत नहीं करते?"

मार्शल चेन यी ने राष्ट्रपति ल्यू शाओ ची की बर्खास्तगी के खिलाफ भी नाराजगी प्रकट की। उन्होंने कहा :

"ल्यू शाओ ची मेरे अध्यापक और गुरू थे। उनकी बर्खास्तगी का मामला संसद में आना चाहिए और वहां से स्वीकृति लेना आवश्यक है।"

चीनी क्रान्ति के बहुत से आदरणीय नेता माओ त्से-तुंग की गुंडागर्दी से अपमानित होकर धड़ाधड़ हत्यायें कर रहे थे। इस घटनाक्रम से मार्शल चेन यी बहुत दुःखी थे। कम्युनिस्ट पार्टी के उन महान नेताओं की लाल रजाकारों के हाथों इस अपमानजनक मृत्यु से मार्शल को बहुत तकलीफ हुई। एक बार उन्होंने भरी सभा में पूछा :

"क्या आप लोगों की अन्तरात्मा यह सब देखकर दुःखित नहीं होती?"

मजदूर वर्ग द्वारा प्रतिरोध

सर्वहारा अधिनायकत्व और लेनिन के नाम की माला जपने वाले माओ त्से-तुंग के चेले जब पूरे चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में आग लगाते फिर रहे थे, और पुराने क्रान्तिकारियों का अपमान करके उन्हें आत्महत्या या माओ त्से-तुंग के सामने आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर कर रहे थे, उस समय उनकी अराजकता चरम सीमा पर थी। इन करोड़ों रजाकारों का सामना करने का साहस किसी में नहीं था। इनके पीठ पीछे महाशक्तिशाली मुक्ति-सेना की टुकड़ियां खड़ी रहती थीं। परन्तु एक अजेय शक्ति, सर्वहारा वर्ग ऐसा था जिसने माओ त्से-तुंग और इन लाल रजाकारों के सामने घुटने टेकने से मना कर दिया। शंघाई, कैन्टन, पेकिंग और बीसियों औद्योगिक केन्द्रों के मजदूर वर्गों ने इन लाल रजाकारों का सामना किया और उनकी गुंडा-गर्दी का मुंहतोड़ जवाब दिया।

हिन्दुस्तान के हमले के बाद से १९६५-६६ तक चीन में कम्युनिस्ट पार्टी और प्रगतिशील विचारधाराओं के उन्मूलन तथा औद्योगिक मजदूर वर्ग की ट्रेड यूनियनों को तहस-नहस करने के काम में माओ त्से-तुंग की जमात और लाल रजाकारों ने जो विनाश लीला दिखाई उसका यह संक्षिप्त इतिहास है।

आर्थिक क्षेत्र में अराजकता

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का विनाश करने के बाद माओ त्से-तुंग जमात ने आर्थिक अराजकता उत्पन्न करने वाले नारे देने शुरू कर दिये। १९५८ से लेकर १९६४ तक समाजवादी शिविर की वार्षिक उत्पादन क्षमता ९.८ प्रतिशत थी, जबकि विश्व प्रगति का औसत ६.९ प्रतिशत था। परन्तु इसी अर्से में चीन की आर्थिक प्रगति ५.८ प्रतिशत थी। इसके बाद के अर्से में चीनी नेताओं ने खण्डहरों पर नई दुनिया के

निर्माण का नारा दिया। यह एक अजीबोगरीब सिद्धान्त था कि अपने ही हाथों उन्होंने पहले तो चीनी अर्थ-व्यवस्था का विनाश करके उसे खण्डहर का रूप दिया और बाद में उसका निर्माण करने लगे।

इस निर्माण कार्य में उन्होंने तमाम जनतांत्रिक तरीके ताक पर रख दिये। एक मजदूर से चार मजदूर का काम लिया। चीन के डेढ़ लाख बुद्धिजीवियों को, जिन्होंने माओ त्से-तुंग के दुस्साहसिक कार्यक्रम को ठुकराया था, "पुन: शिक्षित" करने के लिए देहातों में भेजा गया। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में लाखों की संख्या में आबादी की अदला-बदली हुई। अल्पसंख्यक ज़ातियों को क्रूरतापूर्वक दबाया गया। इस प्रकार पूरे चीन को एक विशाल श्रम-शिविर के रूप में बदल दिया गया।

माओ त्से-तुंग की जमात ने सबसे पहले समाजवादी विचार-धारा को नष्ट किया। उसके बाद कम्युनिस्ट पार्टी तहस-नहस कर दी गई। तीसरे स्थान पर चीन की क्रान्तिकारी परम्पराओं, नेताओं की प्रतिष्ठा और जनतन्त्र की हत्या की गई। उन्होंने पूरे चीनी शासन-तन्त्र को नौकरशाही शिकंजे में कसकर बाहरी दुनिया में संहार-लीला शुरू की।

चीनी नेता अपने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण में राष्ट्रीय अहंकार की जिस नीति का अनुसरण कर रहे थे उसका यह स्वाभाविक नतीजा था। इस दूषित मनोवृत्ति ने दुनिया की सामाजिक मनोवृत्ति में रुकावट पैदा की और खुद चीनी समाज को रहस्यों से परिपूर्ण करके सामाजिक वातावरण दूषित एवं अनिश्चयपूर्ण कर दिया। १९६५ में चीन में विशाल पैमाने पर जो तोड़-फोड़ शुरू हुई वह १९६८ तक चलती रही। इस तोड़-फोड़ को चीनी नेताओं ने सांस्कृतिक क्रान्ति का नाम दिया था। ये भूचाल के ऐसे दिन थे जब विदेशियों को तो क्या खुद चीनी जनता तक को यह पता नहीं था कि किसके साथ क्या बीतेगा और कौन कहां जा उड़ेगा ? केवल पश्चिमी जर्मनी के कुछ परमाणु एवं परिक्षेप-

णास्त्र विशेषज्ञ तथा हांगकांग के लुटेरे सौदागर चीन में जहां कहीं भी जाते थे, स्वागत पाते थे। सभी राष्ट्रों से राजदूत वापिस बुला लिये गये। विदेशी राजदूतों को चीन में नजरबन्दों की हालत में रखा जाने लगा।

इतना ही नहीं, चीनी लोग भी, जो घूमने-फिरने के शौकीन होते हैं, अपने घरों में रहने के लिए मजबूर कर दिये गये। उनकी दौड़-धूप बन्द कर दी गई और योजना बनाकर जनता के विशाल काफिले दक्षिण से उत्तर की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर भेजे जाने लगे। अखबारों का केवल एक ही काम रह गया था। सनकी चीनी नेताओं की घोषणायें छापना। शिक्षा संस्थायें बन्द कर दी गई। सड़कों पर मुक्ति सेना की टुकड़ियां परेड करती रहती थीं। १९६९ में कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस हुई, जिसमें पूरी वस्तुस्थिति पर पर्दा डाल दिया गया।

गुटबाजी की पराकाष्ठा

सांस्कृतिक क्रान्ति का भारी गर्दो-गुबार उतरने के बाद लोग यह आशा करते थे कि चीनी नेता अपने कार्य की समीक्षा करेंगे तथा सही मार्ग पर चलने की कोशिश करेंगे। इस नवीं कांग्रेस ने केवल एक काम किया। जिन विश्वविख्यात क्रान्ति नेताओं को सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम पर छेड़ी गई हुल्लड़बाजी के जरिये उखाड़ फेंका गया था, उनके स्थान पर नये नेता चुन लिए गये। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में मुख्यत: दो गुट काम करते रहते थे, एक गुट के नेता माओ त्से-तुंग थे और इसी गुट में उनके भाषण तैयार करने वाले चेन पोता, उनके पुराने गुप्तचर विभाग के कांग सेन, उनकी सिनेतारिका पत्नी चियान चिंग, उनका दामाद यावो येन युवान और यावो का अभिन्न मित्र चान चिन चुवांग शामिल थे। इस गुट के सख्त विरोध में जो दूसरा गुट काम किया करता था, उसके नेता रक्षा मन्त्री लिन प्याओ थे। इसके अलावा, एक तीसरा तट-

स्थतावादी गुट काम करता था, जिसके नेता श्री चाऊ एन लाई रहे हैं। श्री चाऊ एन लाई के पीछे सभी पुराने नौकरशाह, सी० आई० डी० विभाग और पढ़े-लिखे वे पुराणपंथी थे जो शासन के महत्वपूर्ण पदों पर सदा आसीन रहे हैं।

जुलाई १९७१ में जब किसिंगर के पेकिंग जाने की घोषणा की गई और यह भी बताया गया कि फरवरी १९७२ में श्री निक्सन पेकिंग जा रहे हैं तो यह किसी से छिपा नहीं रह गया कि चीनी नेताओं ने गहरी गोता-खोरी शुरू कर दी है। गुटबाजी के रूप में यह अन्तर्राष्ट्रीयतावादी गुट की अन्तिम पराजय थी और श्री चाऊ एन लाई तथा का० माओ त्से-तुंग गुट के बीच गहरा समझौता था। विदेश नीति के क्षेत्र में यह समाजवादी शिविर और गुटनिरपेक्ष देशों के विरोध में अमरीका तथा पश्चिमी देशों की ओर झुक जाना और दक्षिण-पूर्वी एशिया की ओर मुख मोड़ना था। सितम्बर १९७१ में लिन प्याओ की हत्या कर दी गई। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयतावादी गुट के अन्तिम अवशेष का भी सफाया कर दिया गया। इसके तुरन्त बाद श्री निक्सन की यात्रा, चीन का संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश, श्री तनाका की चीन यात्रा, दोनों देशों के बीच दूत-सम्बन्धों की घोषणा, पश्चिमी जर्मनी के विदेश मन्त्री की पेंकिंग यात्रा और युगों पुरानी चीन-अमरीका दुश्मनी के स्थान पर उन दोनों देशों के बीच आपसी गठबन्धन के दिन शुरू हो गये।

इण्डोनेशिया में तोड़फोड़

इण्डोनेशिया पूरे एशिया का तीसरा महान देश है। इसकी साम्राज्यविरोधी प्रगतिशील परम्परायें शानदार रही हैं और इसके भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० सुकार्नो गुटनिरपेक्ष शिविर के मूर्धन्य नेता रहे हैं। इसी प्रकार, इण्डोनेशिया की कम्युनिस्ट पार्टी चीन के बाद पूरे एशिया में सबसे बड़ी पार्टी थी। डा० सुकार्नो का नाम स्व०पं० जवाहर-

लाल नेहरू, श्री चाऊ एन लाई, डा० हो ची मिन्ह, डा० एन्क्रूमा, स्व० पैट्रिस लुमुम्बा, और स्व० कर्नल नासिर के साथ लिया जाता था।

डा० सुकार्नो के साथ चीनी नेताओं की बहुत गहरी दोस्ती थी और इण्डोनेशिया की कम्युनिस्ट पार्टी पर चीनी नेताओं का असाधारण प्रभाव था। यह प्रभाव इतना गहरा था कि इस पार्टी के नेता अप्रत्यक्ष रूप से माओ त्से-तुंग को ही अपना नेता मानते थे और उसी लाइन पर चलते थे।

इस सम्पर्क और प्रभाव का नाजायज फायदा उठा कर चीनी नेताओं ने इण्डोनेशिया के वामपक्षी राष्ट्रवादी नेताओं तथा साम्यवादियों को गुमराह कर दिया। उन्हें ऐसे दुस्साहसी मार्ग पर चलाया और रचनात्मक जनहित के कार्यों से विमुख कर दिया कि प्रतिक्रियावादियों ने एक ही हल्ला बोल कर उनका सफाया कर दिया। सी० आई० ए० का यह हमला घोर-दक्षिणपंथी पार्टियों के माध्यम से किया जा रहा था। और दूसरी ओर अतिवामपंथी नारे लगवा कर चीनी नेता उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग काट रहे थे। अतिदक्षिणपंथ ने अतिवामपंथ की इस नासमझी का फायदा उठाकर पूरी प्रगतिशील ताकतों को समाप्त कर दिया।

यह वैसा ही कत्लेआम था जैसा अभी बंगलादेश में हुआ है। ३० लाख से भी अधिक लोगों की नर-बलि चढ़ाई गई। तमाम राष्ट्रवादी नेता और प्रगतिशील कार्यकर्त्ता मौत के घाट उतार दिये गये। प्रतिक्रियावादियों ने इस बात का भी विवेक नहीं किया कि कौन-सा मार्क्सवादी समाजवादी है, कौन-सा मार्क्सवाद-विरोधी समाजवादी है, कौन-सा फैशन के लिए समाजवाद का नाम लेता है, और कौन-सा अमरीका-परस्त समाजवादी है। उन्होंने सभी का सफाया कर दिया। इस कत्लेआम में सबसे ज्यादा नरबलि चीनियों की चढाई गई। ये चीनी परम्परागत ढंग से दोहरी राष्ट्रीयता वाले थे और उनके बारे में यह

प्रचार किया गया था कि वे इण्डोनेशिया को चीनी कब्जे में ले जाना चाहते हैं।

यदि चीनी नेताओं ने नासमझी के कारण अर्थात् भूल से ऐसा काम किया होता जिसने इण्डोनेशिया के प्रगतिशील आन्दोलन को धक्का पहुंचाया है तो वे समय रहते चेत जाते और भविष्य में इण्डोनेशिया अथवा दूसरे देशों में उस भूल को न दोहराते। परन्तु उन्हें सबक लेना ही कहाँ था।

बात केवल इतनी ही नहीं है, जो लोग इण्डोनेशिया में दक्षिणपंथी ताकतों के साथ अन्दर-ही-अन्दर गठबन्धन करते थे और जनता में आकर समाजवाद के या वामपक्षी नारे लगाते थे, जैसे हमारे यहां के कतिपय समाजवादी किया करते हैं, वे भी बख्शे नहीं गये।

डा एन्क्रूमा और पेट्रिस लुमुम्बा सी० आई० ए० के शिकार हुए। कर्नल नासिर उसका शिकार होने से बाल-बाल बचे। डा० सुकार्नो को सी० आई० ए० के मददगार चीनी नेताओं ने तिलतिल गला कर मारा। उन्होंने ही हमारे स्वर्गीय नेता नेहरू जी को भारत पर चीनी हमले द्वारा ऐसा सदमा पहुंचाया, कि विश्वासघात के धक्के से वह समय से पहले ही हमारे बीच से उठ गये।

साम्यवादी जगत के साथ विश्वासघात

चीनी नेता सबसे अधिक चीनी जनता और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी से सशंक रहते हैं। उन्होंने अक्तूबर १९६८ में केन्द्रीय समिति का जो पूर्णाधिवेशन बुलाया था उसमें केन्द्रीय समिति के १७४ सदस्यों और उम्मीदवार सदस्यों में से १३० को दण्डित और अपमानित किया जा चुका था। पहले की तरह इस सम्मेलन को भी विस्तारित सम्मेलन की संज्ञा दी गई थी। परन्तु इसमें पार्टी के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं बल्कि माओ की ओर से मनोनीत सदस्य आये थे। १९६८ में ही

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सैद्धान्तिक पत्र **हुंगची** ने अपने चौथे अंक में लिखा था :

"चुनावों में अन्धविश्वास रूढ़िवाद की एक और अभिव्यक्ति है।"

इसी सम्मेलन में माओ की जमात कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस का ढोंग भरने की तैयारियां कर रही थी ताकि अपने सैनिक नौकरशाही शासन को 'वैधता' प्रदान की जा सके जिसे माओवादी 'नयी व्यवस्था' कह कर पुकारते हैं। आजकल चीन पर पुराने नौकरशाहों तथा प्रतिक्रियावादी सैनिक अधिकारियों का एवं अभिजात वर्ग का ही वास्तविक शासन है। जनता को बेवकूफ बनाने के लिए ये लोग लेनिनवाद के नाम पर माओवाद की पैरवी करते हैं और शासक के रूप में वे श्री चाऊ एन लाई को इस्तेमाल करते हैं। यदि कल श्री चाऊ एन लाई उनके हाथों में खेलने से इन्कार कर दें तो वह भी लिन प्याओ तथा ल्यू शाओ ची की तरह संशोधनवादी कह कर उखाड़ दिये जायेंगे।

परन्तु पूरी सत्ता हाथ में आने के बाद भी इन्हें चीनी जनता से यह डर बना रहता है कि वह किसी दिन भी विद्रोह कर देगी और उनकी सत्ता रेत की दीवार की तरह ढह जाएगी—इसलिए कि सोवियत संघ को चीनी जनता बड़े भाई की तरह आदर से देखती है, समाजवादी शिविर से वह अलग होना नहीं चाहती और भारत के प्रति उसके मन में परम्परागत मैत्री के भाव हैं। चीनी नेता जब तक जनता को सोवियत संघ विरोधी मदिरा पिला कर उन्मत्त नहीं करते और भारत के प्रति उसकी मैत्री भावना खण्डित नहीं करते, तब तक वे अपनी गद्दी सुरक्षित नहीं समझते।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने १९५५ के बाद से ही घृणित प्रचार शुरू कर दिया था। जब हजारों चीनी नवयुवक सोवियत संघ में विज्ञान तथा कारीगरी की शिक्षा लेने जाते थे, तो उन्हें माओवाद की

यह घुट्टी पिलाई जाती थी कि उन्हें सिखाया ही क्या जा रहा है। इस तरह से सीखने में तो चीनियों को "सौ साल" लगेंगे ! जब पहली पंच-वर्षीय योजना पर काम चल रहा था और सोवियत संघ के सहायक लोग, प्राविधिक और अभियन्ता सुनियोजित ढंग से काम करवा रहे थे तो चीन का अर्थतंत्र अपने पांवों पर खड़ा होने लगा था। जनता में सोवियत प्रतिष्ठा कई गुना अधिक होती जा रही थी। उस समय आम-तौर पर चुपके-चुपके और कभी-कभी खुल कर यह प्रचार चलता था कि इस तरह तो चीन को "सौ साल" लगेंगे। और चीनी जनता, जो गरीबी का शिकार थी, उसे त्वरित विकास की बात बहुत अच्छी लगती थी।

सोवियत संघ की जनता का स्तर चीनी भाइयों के मुकाबिले बेह-तर होना स्वाभाविक था। उन्होंने उनसे ३२ साल पहले साधना आरम्भ कर समाजवादी अर्थतंत्र के भवन का निर्माण किया था। उसका लाभ भी उसे मिलना ही था। चीनी नेताओं ने बहुत कपटपूर्ण ढंग से इस उन्नति से चीनी जनता को प्रेरणा देने के बजाय यह कुटिल प्रचार शुरू किया कि "रूसी लोग वैभव का जीवन व्यतीत करते हैं। उनका पतन हो गया है। वे स्वयं तो सुख से रहते हैं और हमें विकास का ऐसा लम्बा मार्ग बताते हैं जिस पर हमें पता नहीं कब तक गरीब बने रहना होगा।" और वे चीनी जनता को यह समझाते थे कि "सोवि-यत संघ ने क्रान्ति का रास्ता छोड़ दिया है। उसे अब इसकी जरूरत भी कहां है। उनकी गरीबी मिट गई है। गरीबी नियामत है और वही लोगों को सच्चा क्रान्तिकारी बनाती है। रूसी संशोधनवादी हो गये हैं," इत्यादि।

इससे भी जब काम नहीं चला और चीनी जनता ने सोवियत-विरोधी मार्ग पर नाचने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने अमरीका-विरोधी भावनाओं को सोवियत-विरोधी भावनाओं में बदलना शुरू कर दिया। "रूस और अमरीका दोनों महाशक्ति हैं। वे पूरे संसार को

अपने प्रभाव में बांट लेना चाहती हैं। अमरीका चीनी जनता का परम्परागत शत्रु है। सोवियत संघ अमरीका से मिल गया है।" और इसके बाद वे सीधा अर्थ निकालते थे कि "सोवियत संघ चीनी क्रान्ति और जनता का शत्रु है।" परन्तु चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का बहुमत इस सोवियत-विरोध का कटु आलोचक था। मार्शल पेंग ते हुवाई, ल्यू शाओ ची, मार्शल चेन यी और दूसरे विश्वविख्यात चीनी नेता इतने नीचे गिर कर सोवियत-विरोधी प्रचार में शामिल नहीं होना चाहते थे। परन्तु माओवादियों ने रक्षामन्त्री लिन प्याओ तथा सेना का सहयोग लेकर इन सच्चे क्रान्तिकारियों को 'संशोधनवादी' और 'दलाल' कह कर राजनीतिक क्षितिज से हटा दिया। बाद में लिन प्याओ को भी 'रूसी दलाल' कह कर मौत के घाट उतार दिया गया।

इन सब षड्यन्त्रों के बाद भी उन्हें यह यकीन नहीं हुआ कि चीनी जनता सोवियत-विरोधी प्रचार पर विश्वास करने लगी है। ९वीं पार्टी कांग्रेस में वे आठवीं कांग्रेस के अन्तर्राष्ट्रीयतावादी फैसलों को पलटवा सकेंगे और पार्टी कांग्रेस तथा चीनी जनता में सोवियत-विरोधी उन्माद पैदा कर सकेंगे, इसका उन्हें यकीन नहीं था। इसके लिए बड़े पैमाने पर षड्यन्त्र किया गया। उसूरी नदी पर स्थित दामांस्की द्वीप पर आधुनिकतम हथियारों के साथ ३०० चीनियों ने सोवियत सीमा-रक्षकों पर धावा बोल दिया। ३१ फौजी बलिदान हो गये और पचासों घायल हुए। इसके साथ ही पूरे चीन में रेडियो तथा अखबारों में प्रचार तेज कर दिया गया कि "रूसियों ने हमला बोल दिया है और वे हमारी मातृभूमि को अपने अधिकार में करना चाहते हैं।"

पूरे चीन में ऐसा सोवियत-विरोधी उन्माद उत्पन्न कर दिया गया कि यदि किसी ने स्थिति पर 'सन्तुलित' ढंग से 'विचार' करने की बात भी कह दी तो "गद्दार", "संशोधनवादी" और "रूसी दलाल" कह कर सड़कों पर उसका निकलना असम्भव कर दिया गया। ऐसे लोगों के घरों पर

हमले किये जाने लगे। उनके घर आग की लपटों में झोंक दिये जाते थे।

इससे अधिक साजिश और दूसरी क्या हो सकती है कि कल तक जो लोग अमरीका और रूस में 'हेलमेल' के आरोप लगाया करते थे वे ६ साल तक वार्सा में आपस में गुपचुप साजिश करते रहे और आजकल खुलकर अमरीकी साम्राज्यवाद तथा सी० आई० ए० के साथ मिलकर संसार में तोड़फोड़ कर रहे हैं।

वियतनाम के साथ धोखा

वियतनाम का मुक्ति संग्राम पूरे संसार के मुक्ति आन्दोलनों के इतिहास में सर्वाधिक गौरवशाली और वीरतापूर्ण इतिहास है। वियतनाम ने अनगिनत दधीचि पैदा किये हैं और इस युग के सबसे बड़े राक्षस को पराजित करके वियतनामियों ने पूरी मानवजाति का माथा ऊंचा किया है। वे हो ची मिन्ह, गाँधी और लेनिन की परम्पराओं को इतना ऊंचा उठाकर ले गये हैं कि अब शायद ही किसी देश की जनता बलिदान की उनसे अधिक ऊंची मिसाल एवं मानदण्ड कायम कर सकेगी। वियतनाम के वीर युगों-युगों तक वीरों के उदाहरण एवं आदर्श बने रहेंगे। भारत की वीर जनता वियतनामी वीरों का सदा आदर करती रही है, उनकी वीरता को मान्यता प्रदान करती रही है और आज भी हर तरह से उनके साथ है।

खुद अमरीकी साम्राज्यवादियों के आंकड़ों के अनुसार इस युद्ध में १ जनवरी १९६१ से लेकर १३ जनवरी १९७३ तक ४५,९३१ अमरीकी सिपाही मारे गये, १०,६९६ अमरीकी अन्य कारणों से वियतनाम में मरे, ३,०३,६०५ घायल हुए और १,२७६ लापता हैं तथा ५८९ युद्धबन्दी बनाये गये हैं। इस लड़ाई में दक्षिण वियतनाम के ३,८६,००० सिपाही मारे गये और ४,३०,००० घायल हुए हैं। इस युद्ध में दक्षिण

कोरिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और थाईलैण्ड के ५,२२१ सिपाही मारे गये। ये अपने आका अमरीकी साम्राज्यवादियों की ओर से वीर वियतनामियों से लड़ने आये थे।

अमरीकी अनुमानों के अनुसार उत्तरी वियतनाम और राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के करीब ६,२८,००० वीर पुरुष शहीद हुए।

१६६६ तक अमरीकियों ने वियतनाम पर ७६ लाख टन वजन के बम गिरा दिये थे और इसके बाद के दिनों में इससे दुगने बम गिराये जा चुके हैं। दूसरे महायुद्ध के सम्पूर्ण काल में दोनों पक्षों की ओर से इतने बम पूरे यूरोप पर नहीं गिराये गये थे। वियतनाम की करीब एक चौथाई जमीन आग से पक कर इस तरह लाल हो गई है जैसे भट्टे की जमीन हो जाती है और एक चौथाई जमीन में बम गिरने से २०-२० फुट गहरे गड्ढे हो गये हैं। करीब ३०-४० लाख लोगों की नरबलि लेने वाले इस युद्ध में अमरीका ने करीब १० खरब रुपया खर्च किया है जिससे ५०० भिलाई इस्पात कारखाने खड़े किये जा सकते हैं और चांद की आधी दूरी तक ६ फुट चौड़ी सीमेंट की सड़क बनाई जा सकती है।

इस युद्ध में वीर वियतनामियों ने अमरीका के ४,६१७ विमान मार गिराये हैं जिनमें डेढ़ करोड़ मूल्य के कीमती विमान भी हैं और ४,७८३ हैलीकोप्टर धराशायी कर दिये हैं।

सोवियत संघ ने पूरे संसार के मुक्ति-आन्दोलनों की भांति वियतनाम के मुक्ति आन्दोलन की भी खुल कर सहायता की है। सोवियत संघ ने इस मुक्ति संघर्ष में १६६५ से १६७१ तक कुल मिलाकर १ अरब ६५ करोड़ ५० लाख (अमरीकी डालर) की सैनिक सहायता और १ अरब ५८ करोड़ ५० लाख (अमरीकी डालर) की आर्थिक सहायता दी है।

इस सैनिक सहायता में वह सामग्री तथा प्रक्षेपणास्त्र भी शामिल हैं जिनसे वे विमान गिराये जा सके जो रात-दिन वियतनाम पर आग

बरसाया करते थे। इस सहायता के अलावा यूरोप के अन्य समाजवादी देशों ने बन्धु वियतनाम को ८० करोड़ (अमरीकी डालरों) की आर्थिक सहायता दी। इसमें सन्देह नहीं है कि चीनी सरकार ने भी वियतनाम को सैनिक व आर्थिक सहायता दी है। परन्तु सोवियत संघ की सहायता की तुलना में यह नगण्य है और विशेष रूप से जब १९६९ के बाद चीनी शासन पर माओवादियों का शिकंजा पक्का हो गया तथा अमरीकी हमलों ने सर्वनाशी रूप ले लिया तब यह सहायता भी पहले के मुकाबिले कम हो गई, जब कि आवश्यकता थी उसके निरन्तर विस्तार की। उदाहरण के लिए तीन वर्षों की सहायता के आंकड़े निम्नलिखित हैं :

(१० लाख अमरीकी डालरों में)

	१९६९	१९७०	१९७१
सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देश	५०५	६२०	६००
चीन	१९५	१४५	१७५

(ये आंकड़े सम्वाददाता हेनरी कीज द्वारा अपनी रिपोर्ट में दिये हैं जो उन्होंने अमरीकी जासूसों की सूचना से संग्रहित किये हैं)।

वियतनाम के विरुद्ध जब से अमरीकी आक्रमण शुरू हुआ है तभी से सभी समाजवादी देश वियतनामी देशभक्तों की सहायता की खातिर तमाम समाजवादी देशों की एकता के लिए बार-बार अनुरोध करते रहे हैं। उन्होंने चीन से कहा कि तमाम सैद्धान्तिक मतभेदों को भुलाकर वियतनाम के मुक्ति संग्राम की सहायता में सभी को संयुक्त प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु माओपंथियों ने इन प्रस्तावों को ठुकरा दिया। उनका मकसद वियतनामी जनता के हितों के अनुरूप तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया में अमरीकी आक्रमण के विरुद्ध नहीं रह गया था।

इतना ही नहीं, सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों के लिए

वियतनामी भाइयों की सहायता करने के लिए चीन का रेल-मार्ग इस्ते-माल करना जरूरी था। परन्तु चीनी इस सहायता के मार्ग में बाधक बन गये। इससे उनका वियतनाम के प्रति प्रेम साफ जाहिर हो जाता है। १९६९ के बाद चीन की भूमि से हो कर इस सहायता का वियतनाम पहुंचना बिलकुल बन्द हो गया। सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों को यह सहायता समुद्री मार्ग से भेजनी पड़ी। हाईफोंग और दूसरे बन्दरगाहों पर अमरीकी बेड़े तैनात रहते थे और इन देशों को यह सहायता अमरीका से सीधी टक्कर लेने का खतरा मोल ले कर भेजनी पड़ती थी।

वास्तविकता यह है कि चीनी नेता क्यूबा की भांति वियतनाम के सवाल पर दोनों महाशक्तियों को प्रत्यक्ष मुठभेड़ में धकेलना चाहते थे। यह बात वियतनाम के मुक्ति संग्राम के लिए और भी खतरनाक साबित हुई। खुद अमरीकी सूचनाओं के अनुसार इससे वियतनाम पूरी तरह विलुप्त हो जाता। परन्तु इससे चीनियों को क्या? चीनी नेता तो यही चाहते थे।

वियतनाम की अमर जनता और उसके अमर नेता डा० हो ची मिन्ह युद्ध नहीं चाहते थे। युद्ध उन पर थोपा गया था और जब भी कभी समाज-वादी शिविर, गुटनिरपेक्ष देशों तथा खुद प्रगतिशील अमरीकी जनता के दबाव के सामने झुककर साम्राज्यवादी वियतनाम में शान्ति और सुलह की बात चलाने के लिए मजबूर होते थे, तब चीनी नेता इस प्रकार के उकसावे पैदा करते थे, जिससे अमरीकी साम्राज्यवादियों को शान्ति-वार्ता भंग करने तथा युद्ध को और भी उग्र रूप देने के बहाने मिल जाते थे।

जिस समय १९६४-६५ में अमरीकी साम्राज्यवादियों ने पहली मर्तबा वियतनाम पर अभूतपूर्व बम वर्षा शुरू की तो पूरे संसार के लोग तथा अमरीकी विशेषज्ञ इस आशंका से भयभीत थे कि चीन अपने

पड़ोस में इस विनाश लीला को सहन नहीं करेगा तथा इस मुक्ति युद्ध में अमरीकी साम्राज्यवादियों से भिड़ जायेगा। इस आशंका को दूर करते हुए जनवरी १९६५ में माओ त्से-तुंग ने अमरीकी लेखक एडगर स्नो से कहा था :

"चीनी जनता तभी अमरीका से लड़ेगी जब अमरीका सीधा चीन पर हमला करेगा।"

क्या अमरीकी साम्राज्यवादियों को इससे भी ज्यादा स्पष्ट संकेत चाहिए था ?

अमरीकियों को अपनी ओर से तथा खुद सोवियत संघ की ओर से निश्चिन्त करने के लिए १९६५-६६ में माओपंथियों ने सोवियत संघ पर अपने सैद्धान्तिक तथा भौगोलिक झगड़े और भी तेज़ कर दिये थे।" मई १९६६ में "क्रान्ति के लिए उत्तर की ओर से सबसे खतरनाक हमले" की चर्चा की जाने लगी। मई में ही चीन के विदेश मन्त्री मार्शल चेन यी ने विदेशी पत्रकारों से कहा :

"सोवियत संघ खतरनाक मित्रों की श्रेणी में है जिसके बिना चीनी जनता अपने को अधिक सुरक्षित अनुभव करती है।"

यह स्पष्ट है कि इन घोषणाओं के द्वारा जिन लोगों को यह बात समझाई जा रही थी, वे इसे खूब समझ रहे थे। १९६९ के वाद अमरीकी साम्राज्यवादियों को यह पूरा निश्चय हो गया था कि वियतनाम के मामले में चीन न केवल स्वयं दूर रहेगा वल्कि दूसरे समाजवादी देशों को भी पूरी सहायता करने से रोकता रहेगा तथा इस प्रकार हमलावरों की अप्रत्यक्ष सहायता में लगा रहेगा। यही हुआ भी।

पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व रक्षा मन्त्री फ्रैंज जोसेफ स्ट्रॉस ने कहा :

"पेकिंग की दिलचस्पी इस वात में है कि मध्य यूरोप में सोवियत साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पर फौजें मौजूद रहें, जब कि हम रूसियों को उनकी एशियाई पूर्वी सीमा पर मजबूती से बांधे रखना चाहते हैं।"

जिस समय पश्चिमी जर्मनी बर्लिन में एक और धावा बोलने की तैयारी कर रहा था उस समय ६ मार्च, १९६९ में विएना के समाचार पत्र 'कूरियर' ने लिखा :

"इधर माओ त्से-तुंग यह स्पष्ट करते जा रहे हैं कि वह बोन की पूर्वी नीति को काफी सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं··· यदि इसे ध्यान में रखा जाय तो असुरी नदी के तट पर संघर्ष और जर्मन संघ गणराज्य के राष्ट्रपति की पश्चिम बर्लिन में ५ मार्च के चुनाव के बीच कड़ी का होना सम्भव है, यह माओ के विचारों के अनुरूप होगा।"

इन बातों का उल्लेख इसलिए किया जा रहा है कि जब चीन की सीमा पर अमरीकी साम्राज्यवादी नरसंहार कर रहे थे, उस समय माओपंथी पश्चिमी जर्मनी के प्रतिक्रियावादियों से दोस्ती गांठ रहे थे और सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों से खुली दुश्मनी और मुठभेड़ें कर रहे थे।

वियतनाम के अमर मुक्ति संघर्ष के प्रति जिसने पूरी मानव जाति का सम्मान बढ़ाया है, माओपंथियों का यही व्यवहार था।

हिन्दुस्तान के प्रगतिशील आन्दोलन में तोड़-फोड़

राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रगतिशील और समाजवादी विचार रखने वाले तत्त्वों का सदा ही बहुमत रहा है। यद्यपि बीच-बीच में प्रतिक्रियावादी तत्त्व प्रगतिशील नीतियों के कार्यान्वयन में तोड़-फोड़ करने में कामयाब हो जाते थे, परन्तु फिर भी प्रत्येक निर्णायक मोड़ पर प्रगतिशील तत्त्वों ने पूरे कांग्रेस संगठन को समाजवादी मोड़ देने में कामयाबी हासिल की है। इसके अलावा, गांधी और नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस संगठन न केवल हिन्दुस्तान की मुक्ति के लिए कठोर संघर्ष करता रहा है बल्कि पूरे संसार के साम्राज्यविरोधी मुक्ति आन्दोलनों में उसने सक्रिय योगदान दिया है।

परन्तु शुरू से ही माओपंथी नेता पं० नेहरू और कांग्रेस की प्रगतिशील भूमिका कम करके आंकते रहे और हमारे संगठन में उन्होंने हमेशा ही प्रतिक्रियावादियों को और उनकी विचारधारा को बल पहुचाने की कोशिश की।

प्रगतिशील कांग्रेस कार्यकर्त्ता जब अपनी सरकारों के प्रगतिशील कार्यों के पक्ष में तथा प्रगतिविरोधी कार्यों के विरोध में जनता को आन्दोलित करते हैं तो हमारा यह काम वैज्ञानिक कार्यनीति पर आधारित है।

परन्तु चीनी नेताओं ने १९६२ में हिन्दुस्तान पर हमला करके हमारे संगठन में उस पक्ष को कमजोर किया जो शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, गुट-निरपेक्षता, साम्राज्यवाद का विरोध, अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व तथा समाजवादी नीति का पैरोकार है। इसलिए कि तब तक लोग चीन को समाजवादी ही समझते रहे और एक समाजवादी देश का हम पर हमला करना प्रतिक्रियावाद को खुलेआम बढ़ावा देना था।

काँग्रेस के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी देश की दूसरी बड़ी प्रगतिशील संस्था है। इस पार्टी को माओपंथियों ने दो भागों में बांट दिया और उसकी ताकत कमजोर हो गई। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मुकाबिले पेकिंग रेडियो से मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को क्रान्तिकारी बताया और माओपंथियों का क्रान्ति से मतलब है, किसी प्रगतिशील संस्था में तोड़-फोड़ करना। परन्तु माओपंथी केवल इतनी ही तोड़-फोड़ से संतुष्ट नहीं हुए, उन्होंने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में भी तोड़-फोड़ शुरू की। एक छोटा-सा नक्सलवादी गिरोह मार्क्सवादी पार्टी के मुकाबिले खड़ा कर दिया। इन नक्सलवादियों के बीच उन्होंने तीन गिरोह बनाये और एक के मुकाबिले दूसरे को क्रान्तिकारी बताते रहे। ये नक्सलवादी भूमि-सुधारों के नाम पर व्यक्तिगत आतंक, और तोड़-फोड़ मचाने का, प्रगतिशील साहित्य की होली जलाने का, राष्ट्र-

पिता की प्रतिमायें तोड़ने का और छोटे पैमाने पर उसी विध्वंस का काम करते रहे जो उन्होंने लाल रजाकारों के रूप में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ चीन में किया था।

इसके बाद उन्होंने अखिल भारतीय किसान सभा तोड़ी। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस तोड़ी, विद्यार्थी संघ तोड़ा और अब वे चाहे मार्क्सवादी हों या नक्सलपंथी, पूरे हिन्दुस्तान में प्रतिक्रियावादी दलों के साथ मिल कर तथा सी० आई० ए० के साथ गठबन्धन करके प्रगतिशील आन्दोलनों में विघटन एवं तोड़-फोड़ का काम तेजी के साथ कर रहे हैं।

सी० आई० ए० के एजेन्ट बड़े-बड़े पूंजीपतियों के अखबारों, औद्योगिक घरानों, और बड़े नौकरशाहों के जरिये तोड़-फोड़ करते हैं और माओपंथी राजनीतिक पार्टियों तथा मजदूरों, किसानों, नौजवानों एवं बुद्धिजीवियों के आन्दोलनों में फूट डालते हैं।

पूरे संसार में तोड़-फोड़

फ्रान्स

यूरोप में फ्रान्स की क्रान्तिकारी परम्परायें बहुत पुरानी हैं। दुनिया में सबसे पहले इसी देश के मजदूरों ने ऐसी क्रान्ति की थी जो विफल तो कर दी गई, परन्तु पूरे संसार के मजदूर वर्ग के लिए प्रेरणा दे गई। उन क्रान्तिकारियों ने 'पेरिस कम्यून' की स्थापना करके शासन का ऐसा नमूना पेश किया था जो तब से लेकर आज तक दुनिया के करोड़ों लोगों को प्रेरणा देता आ रहा है।

दूसरे महायुद्ध के दौरान जब नाजी जर्मनी पूरे यूरोप को अपने पांव तले रोंदता आ रहा था तो फ्रान्स के बुद्धिजीवियों, देशभक्तों, मजदूरों, सोशलिस्टों तथा कम्युनिस्टों ने मिल कर एक ऐसी सुरक्षापंक्ति खड़ी

की थी जिसके प्रतिरोध के सामने नाजी जर्मनी के हौंसले पस्त होने लगे थे। इस अजेय प्रतिरोध की सबसे अगली कतारों में फ्रान्स का मजदूर वर्ग, उसकी कम्युनिस्ट पार्टी और उसके महान् नेता का० मौरिस थोरे थे। का० थोरे क्रान्तिकारी सिद्धान्तों और कार्यनीति के सम्बन्ध में पूरे संसार के क्रान्तिकारियों के लिए एक शिक्षक के समान रहे। नवम्बर-दिसम्बर १९६० में का० थोरे ने माओपंथियों की उस खतरनाक सैद्धान्तिक समझ का पहली बार और प्रभावशाली ढंग से खण्डन किया था जो चीन के समाजवादी पुर्ननिर्माण को खतरनाक मोड़ दे रही थी। माओपंथियों ने का० थोरे की आलोचना से लाभ उठाने के बजाय उन पर कीचड़ उछालना शुरू कर दिया। माओपंथियों ने फरवरी १९६३ में **पीपुल्स डेली** में लिखा था :

"उन पीड़ित राष्ट्रों के क्रान्तिकारी कार्यों की ओर फ्रान्सीसी साथियों का रवैया वास्तव में बड़ा दुःखपूर्ण है।"

और इसके बाद अपने वाक्जाल और बहुत चालाकी भरी घुसपैठ के द्वारा उन्होंने फ्रान्सीसी पार्टी में तोड़-फोड़ का काम शुरू किया। उन्होंने फ्रेंच कम्युनिस्ट पार्टी से निकाले गये सदस्यों को एकत्रित करके एक समानान्तर कम्युनिस्ट पार्टी संगठित करने का प्रयत्न किया। और जब से फ्रान्सीसी सरकार ने चीन को मान्यता प्रदान की तब से चीनियों ने यूरोप में तोड़-फोड़ चालू रखने के लिए पेरिस को अपना अड्डा बनाया।

इटली

पश्चिमी यूरोप में चीनियों की तोड़-फोड़ के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा इटली की सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसके महान नेता का० तोगलियाती थे।

तोगलियाती के खिलाफ अनर्गल प्रचार करने के बाद माओपंथियों ने इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में तोड़-फोड़ शुरू कर दी। इसलिए कि

का० तोगलियाती ने ऐसी राजनैतिक लाइन दी थी, जिसके आधार पर माओपंथियों का सफाया हो जाता। अक्तूबर १९६३ में इटली की कम्युनिस्ट पार्टी के दैनिक पत्र 'यूनिटा' ने चीनी नेताओं पर आरोप लगाया कि वे इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में तोड़-फोड़ कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में पत्र ने यह आरोप लगाया कि जिन दो सौ सदस्यों को कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल दिया गया है, उन्हें लेकर एक समानान्तर संगठन खड़ा करने की कोशिश की जा रही है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अक्तूबर १९६४ में मिलान में हुई अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी (त्रात्सकीवादी) की कांग्रेस में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना एक प्रतिनिधिमण्डल भेजा था। और तब से लेकर आज तक वे इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में निरन्तर तोड़-फोड़ कर रहे हैं। स्वीट्जरलैंड के दूतावास में माओपंथियों ने ३०० कर्मचारियों की विशाल भीड़ भरती कर रखी है और पिछले कुछ ही वर्षों में वहां उन्होंने यूरोप के समाजवादी आन्दोलन तथा विशेष रूप से इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में तथा नैनी की समाजवादी पार्टी में तोड़-फोड़ करने के लिए करोड़ों डालर धन खर्च किया है।

स्वीट्जरलैंड में साम्यवादी पार्टी में तोड़-फोड़ करने के लिए वैवे में स्वीट्जरलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की गई। इस पार्टी के संस्थापक गैराल्ट बुलियार्ट अल्बानिया के सहयोग से स्वीट्जरलैंड की श्रमिक जनता के खिलाफ हरकतें करने के कारण पार्टी से निकाल दिये गये।

बेल्जियम में तथा बरतानिया में इसी प्रकार निष्कासित लोगों को लेकर और वहां की कम्युनिस्ट पार्टी को कमजोर करने के लिए माओपंथियों ने समानान्तर पार्टियां खड़ी करने की कोशिश की।

साइप्रस में जब चीनी प्रतिनिधिमण्डल अफ्रो-एशियाई एकता संगठन में भाग लेने के लिए १९६३ में नाईकोसिया पहुंचा तो उसकी

सबसे पहली हरकत यह थी कि त्रात्सकीपंथियों से सम्पर्क करके साइप्रस में कम्युनिस्ट पार्टी को तहस-नहस कर दिया।

यूरोप में कम्युनिस्ट पार्टी को कमजोर करने के लिए माओपंथियों ने केवल कम्युनिस्ट पार्टी के असन्तुष्ट एवं भ्रष्ट तत्त्वों का ही इस्तेमाल नहीं किया बल्कि स्पेन के शासक वर्ग तक को इस्तेमाल किया और यह शासक वर्ग समाजवादी शिविर को बदनाम करने के लिए चीनी साहित्य का भरपूर इस्तेमाल करते हैं।

माओपंथियों ने दक्षिणी अमरीका के अनेक देशों में जनवादी आन्दोलनों के उभार में जबर्दस्त बाधा खड़ी की, उनमें सैद्धान्तिक मतभेद पैदा किये, फूट के बीज बोये और उस खतरनाक साम्राज्यवाद से लड़ने में उन्हें कमजोर किया जो उनके सीने पर सवार है।

चीनी नेता हर बात पर गलतफहमी पैदा करते हैं और हर अवसर का नाजायज इस्तेमाल करते हैं। क्यूबा की सरकार ने न्यूक्लीयर परीक्षण प्रतिरोध सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इस इन्कारी का मतलब केवल यह था कि क्यूबा के क्रान्तिकारी अमरीका के साथ मिलकर हस्ताक्षर नहीं करना चाहते थे। परन्तु माओवादियों ने उसका यह अर्थ लगाया कि फीदल कास्त्रो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मूल्यांकन में चीन के साथ हैं। लेकिन २३ जनवरी १९६४ में रूसी प्रधानमन्त्री के साथ वक्तव्य देते हुए फीदल कास्त्रो ने कहा :

"अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर जो मतभेद चल रहे हैं उन्हें खत्म करने और एकता को मजबूत करने के लिए फीदल कास्त्रो सोवियत संघ के साथ हैं।"

सारांश यह है कि पूरे संसार के समाजवादी, साम्यवादी तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में तोड़-फोड़ करते हुए माओपंथियों ने ८३ मुल्कों में और ७७ कम्युनिस्ट पार्टियों में तोड़-फोड़ करके अपने गुट बनाये थे। परन्तु धीरे-धीरे इनकी तोड़-फोड़ की नीति छिपी नहीं

रही और दो कारणों से आज पूरे संसार में माओपंथी दुनिया के प्रगतिशील आन्दोलनों में प्रभावहीन हो गये हैं :

१–इसके द्वारा समर्थित गुट अपने-अपने देशों और परिस्थितियों में इस प्रकार का व्यवहार करते हैं कि वे समाज की प्रगतिशील धारा से पूरी तरह कट जाते हैं। बहुत उछल-कूद मचाने के बाद भी निराशा और असफलता ही उनके हाथ लगती है। वे इस तरह मुख्य धारा से कट कर रह जाते हैं कि उस देश और समाज की घोर प्रतिक्रियावादी ताकतें उन्हें इस्तेमाल करती हैं और उनकी गोद में पड़ने के बाद वे अपने आप खत्म होते जाते हैं।

२–समझदार प्रगतिशील तत्व जल्दी ही यह बात ग्रहण कर लेते हैं कि माओपंथियों का रास्ता खतरनाक है। उससे जन-आन्दोलन में फूट पड़ती है तथा इस समझदारी के बाद धीरे-धीरे तमाम प्रगतिशील तत्व माओवादियों का साथ छोड़ने लगते हैं। यही कारण है कि संसार के अनेक समाजवादी देशों में अकेला अल्बानिया पूर्ण रूप से माओपंथियों के साथ है। और बाकी पूरे संसार में जहां कहीं भी चीनियों ने अपने ठिकाने कायम किये हैं वे तमाम लोग या तो गुमराह हैं या फिर शब्दाडम्बर रचने वाले प्रतिक्रियावादी।

अध्याय चार

चीनी नेताओं की सिद्धान्तहीनता

चीनी क्रान्ति की सफलता के बाद वहां जो घटनायें घटीं उनसे पूरे संसार के प्रगतिशील लोगों को हार्दिक दुःख हुआ। इस क्रान्ति की अग्रदूती चीनी कम्युनिस्ट पार्टी बरबाद कर दी गई। चीन में समाजवाद का विकास सन्देहजनक दशा में पहुंच गया है। अर्थ-व्यवस्था के विकास का जनता पर बोझ दुःखद मात्रा में पड़ रहा है। कम्युनिस्ट पार्टी के जिन गौरवशाली नेताओं ने क्रान्ति की सफलता के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया था, वे अपमानित किये गये हैं और उनमें से बहुतों ने आत्म-हत्या कर ली है। समाजवादी सोवियत संघ तथा भारतीय गणराज्य जो चीन के पूरे मुक्ति-संघर्ष के युग में और उसके बाद भी चीनी जनता के परम मित्र एवं सहयोगी थे, वे शत्रुओं की श्रेणी में डाल दिये गये हैं। पूरे समाजवादी शिविर, गुटनिरपेक्ष देशों तथा नये स्वाधीन राष्ट्रों और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में चीनी नेता खलनायक समझे जाते हैं और जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता है, वह अपने आपको हर समय सावधान रख कर ही सुरक्षित समझता है। जिन प्रतिक्रियावादी पूंजीपतियों, साम्राज्यवादियों, सामन्तशाहों और प्रतिक्रियावादी नौकरशाहों के खिलाफ निर्मम संघर्ष करके चीनी क्रान्ति ने विजय पताका फहराई थी, आज चीनी नेता उन्हीं लोगों से मित्रता कर रहे हैं तथा उन्हें सहयोग दे रहे हैं।

हमें यह कतई विश्वास नहीं था कि इस क्रान्ति का परिणाम इतना दु:खद होगा और हम सभी प्रगतिशील लोगों को चीनी घटनाक्रम की इतनी कष्टप्रद आलोचना करनी पड़ेगी।

बहुत से लोग यह बात नहीं समझ पाते कि शब्दों में सारी दुनिया के प्रगतिशील लोगों में अग्रणी स्थान रखने का ढोल पीटने वाले चीनी नेता व्यवहार में इतने प्रतिक्रियावादी कैसे हो गये? इसका मूल कारण चीनी नेताओं की सिद्धान्तहीनता है। अपने विश्वासघाती आचरण तथा त्रात्सकीवाद पर पर्दा डालने के लिए माओपंथी उठते-बैठते और यहां तक कि अप्रासंगिक अवसरों पर भी कार्ल मार्क्स और लेनिन के नामों की माला जपते हैं। जितना ही अधिक वे ऐसा करते हैं, उस समय उतना ही अधिक वे मार्क्सवाद और लेनिनवाद से दूर होते हैं। दुनिया के इन दो सबसे बड़े क्रान्तिकारी दार्शनिकों के नाम की माला वे किसी श्रद्धा के कारण नहीं जपते बल्कि इसका एकमात्र कारण प्रगतिशील लोगों को मूर्ख बनाना है। इस समय पूरे संसार के प्रगतिशील आन्दोलन तथा समाजवादी विचारधारा को चीन के माओपंथी असाधारण क्षति पहुंचा रहे हैं।

ये माओपंथी चीन की पूरी जनता या पूरी कम्युनिस्ट पार्टी नहीं हैं। यह एक छोटी-सी सत्तारूढ़ चौकड़ी है जो किसी-न-किसी तरह सत्ता पर काबिज़ हो गए हैं और उस राज्य सत्ता को चीनी जनता तथा समाजवादी आन्दोलन के खिलाफ इस्तेमाल कर रहे हैं। दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में माओपंथी पुराने कन्फ्यूशियसवादी हैं। सामाजिक दृष्टिकोण के रूप में वे त्रात्सकीवादी विचारधारा को मानते हैं और वर्गीय आधार के रूप में माओपंथी निम्न पूंजीवादियों तथा पथभ्रष्ट तबकों से सम्बन्धित हैं।

क्रान्ति से पहले भी यह माओमण्डली निम्न-पूंजीवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती थी परन्तु मुक्ति संघर्ष के दौरान साम्राज्य-

विरोधी मोर्चे के मंच के रूप में जब विभिन्न विचारधाराओं के लोग मुक्ति आन्दोलन में सम्मिलित हुए तो इनका यह निम्नपूंजीवादी दृष्टिकोण छुपा रह गया।

पूरे माओपंथी साहित्य में प्रायः यह विचार पढ़ने को मिलता है कि माओवाद एक विचारधारा है और बड़े अभिमान के साथ यह कहा जाता है कि माओ त्से-तुंग के विचार चीनी जनता का दृष्टिकोण हैं। इस प्रकार वे खुद भी मार्क्स और लेनिन के विचारों पर जोर देने के बजाय क्रान्ति की सफलता के अन्तिम चरण में माओ के विचारों पर ही अधिक जोर देने लगे हैं। माओ की विचारधारा वस्तुतः चीनी कृषक समुदाय की विचारधारा है। और क्योंकि कृषक समुदाय के जीवन तथा गतिविधियों में अनेक आर्थिक स्तर तथा विभिन्न स्वाथ पाये जाते हैं, इसीलिए माओपंथी दृष्टिकोण में भी विरोधाभास पाये जाते हैं। एक ओर माओपंथी गर्म-गर्म शब्दाडम्बर का इस्तेमाल करते हैं और दूसरी ओर प्रतिक्रियावाद से समझौते करते हैं। चीनी नेताओं की राष्ट्रीय संकीर्ण मनोवृत्ति चीनी कृषिक समुदाय के पिछड़ेपन तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक जीवन-प्रणाली से उत्पन्न हुई है।

इस दृष्टिकोण के सैद्धान्तिक विरोधाभास का यह नतीजा है कि चीनी कृषक समुदाय एक ओर तो अपनी समृद्ध क्रान्तिकारी परम्पराओं के कारण जमींदारों तथा सामन्तशाहों के खिलाफ बार-बार घोर संघर्ष करता रहा और इसने सहकारी कृषि का पथ पकड़ लिया। दूसरी ओर वह समाजवादी विचारधारा में दीक्षित नहीं किया जा सका। परन्तु इसके लिए किसान कसूरवार नहीं हैं। इस वक्त दुनिया में दो ही मुख्य सैद्धान्तिक विचारधारायें काम कर रही हैं, पूंजीवादी विचारधारा और समाजवादी विचारधारा। यदि माओपंथी सही अर्थों में समाजवादी होते तो वे चीनी कृषक समुदाय को शहरी मजदूर वर्ग के साथ जोड़ते। परन्तु एक तो चीन में मजदूर वर्ग की संख्या ही कम थी और

दूसरे माओपंथियों ने जान-बूझकर अपने-आपको मजदूर वर्ग से पृथक् रखा। इसके अनेक ऐतिहासिक कारण थे। मजदूर वर्ग से कटने के बाद तथा विकास की प्रक्रिया के दौरान माओपंथी शहरी निम्न-पूंजीपतियों, कारीगरों, दस्तकारों, छोटे व्यापारियों और उद्योगों के सम्पर्क में आये।

चीनी क्रान्ति में दो विचारधारायें प्रारम्भ से ही काम कर रही थीं और इन विचारधाराओं के संघर्ष में १९५६ के बाद बहुत तेजी से समाजवादी विचारधारा पर पूंजीवादी विचारधारा का प्रभुत्व स्थापित हो गया। समाजवादी विचारधारा जो कुछ बच भी पाई थी उसे सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान लाल प्रहरियों के हमलों से नष्ट कर दिया गया।

चीन में एक ओर तो उग्र समाजवादी नारे लगाये जाते हैं और दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग अभी भी अर्थ-व्यवस्था में बराबर रखा गया है। अर्थ-व्यवस्था के प्रबन्ध में शोषक-वर्गों के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में महत्त्वपूर्ण पदों पर विद्यमान हैं और देश के आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन पर उनका प्रभाव कायम है। ये ही पूंजीवादी तत्त्व उग्रवादी नारे लगाकर एक ओर तो सच्चे समाजवादियों का विध्वंस कर रहे हैं और दूसरी ओर सांस्कृतिक क्रान्ति के तूफानी दिनों में भी जहां बड़े पैमाने पर चीन में तोड़-फोड़ की जा रही थी, पूंजीवादी तत्त्व बिल्कुल नहीं छेड़े गये थे और न उन पर कोई हमला किया गया।

चार सैद्धान्तिक मतभेद

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद पूरे संसार के प्रगतिशील और समाजवादी आन्दोलन तथा संस्थाओं ने मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का नये सिरे से मूल्यांकन किया था। सभी लोग इस नतीजे पर पहुंचे कि साम्राज्यवाद कमजोर हो गया है, विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के पांव दुनिया के एक तिहाई हिस्से से उखड़ गये हैं और अब साम्राज्यवादियों

के लिए राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों तथा समाजवादी देशों पर हमले करना आसान नहीं रह गया है।

इस नई परिस्थिति ने चार बड़े सैद्धान्तिक सवाल जनता के सामने रखे :

१—क्या दो समानान्तर विश्व व्यवस्थायें साथ-साथ रह सकती हैं ?

२—क्या पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण शान्तिपूर्वक हो सकता है ?

३—क्या साम्राज्यवाद को तीसरा युद्ध छेड़ने से रोका जा सकता है ?

४—क्या किसी देश विशेष में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का काया-कल्प इस ढंग से हो सकता है कि जनता पर ज्यादा बोझ भी न पड़े और समाजवाद के लाभ जनता तक तुरंत पहुंचाये जा सकें ?

आज से ३० साल पहले कोई भी प्रगतिशील और साम्राज्यविरोधी बुद्धिजीवी इन प्रश्नों का उत्तर केवल 'नहीं' में देता। इसलिए कि केवल एक ही देश में, सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना हो पाई थी। समाजवाद यद्यपि संसार के घटनाक्रम को प्रभावित कर रहा था, परन्तु वह विश्व व्यवस्था के रूप में नहीं उभर पाया था। समाजवाद विश्व-युद्ध को रोकने में असमर्थ था। दूसरे विश्व-युद्ध का होना इसका उदाहरण है। इसके अलावा, किसी दूसरे देश में यदि समाजवाद विजयी भी हो जाता था तो साम्राज्यवादी ताकतें उन देशों के अन्द-रूनी मामलों में दखल दे कर क्रान्ति को विफल कर देती थीं। स्पेन का जनवादी जनतन्त्र इसी प्रकार कुचल दिया गया था। इसके अलावा संसदीय प्रणाली या शान्तिपूर्ण ढंग से किसी देश में समाजवाद का कायाकल्प होना सम्भव नहीं था। इसलिए कि उन देशों के प्रतिक्रिया-वादियों से मिलकर साम्राज्यवादी ताकतें उलट क्रान्ति करवा देती

थी। तीसरे, सोवियत संघ ने क्रान्ति की सफलता के बाद जब समाजवादी पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया तो किसी भी देश ने उसकी आर्थिक या तकनीकी सहायता नहीं की। इसीलिए अपने ही बलबूते पर और असीम कष्ट उठा कर सोवियत संघ की जनता को समाजवाद का निर्माण करना पड़ा। मूल औद्योगिक शाखाओं का निर्माण करते समय जनता को जो भारी आर्थिक बलिदान करने पड़े, उनका फल उसे करीब १० वर्षों के बाद मिल पाया और वह भी पूरा नहीं।

परन्तु दूसरे महायुद्ध के समय संसार की परिस्थिति मूल रूप से बदल चुकी थी। केवल एक देश के स्थान पर दुनिया की एक तिहाई जनसंख्या में और एक तिहाई भूभाग में समाजवाद विजयी हो चुका था। इसके अलावा, भारत, इन्डोनेशिया, बर्मा, श्रीलंका और एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमरीका के मुल्क साम्राज्यवादी शिकंजे के खिलाफ विद्रोह करके या तो स्वाधीनता प्राप्त कर चुके थे या करने वाले थे। तीसरे, साम्राज्यवादी बाजार के सिकुड़ जाने के कारण विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का संकट और भी गहरा होता गया। विकसित पूंजीवादी देशों के पूंजीपति उस संकट को अपने देशों की आम जनता पर डाल रहे थे। परन्तु उन देशों के मजदूर वर्ग ने इसके खिलाफ जबर्दस्त आन्दोलन छेड़े और यह पहला मौका था जब इन देशों की आम जनता और कभी-कभी किसान भी इस आन्दोलन में साम्राज्यवादियों का विरोध करने के लिए मोर्चे लगा रहे थे। इस प्रकार एक ओर तो समाजवादी शिविर, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन और विकसित पूंजीवादी देशों का मजदूर वर्ग साम्राज्यवाद पर करारी चोट कर रहा था और दूसरी ओर एक विश्व समाजवादी व्यवस्था के कारण ऐसी सम्भावनायें पैदा हो रही थीं कि नये स्वाधीन राष्ट्र सहायता के लिए साम्राज्यवादियों का मुंह ताकने के बजाय समाजवादी शिविर से सहयोग ले सकते थे और अपनी अर्थ-व्यवस्था को विकसित

करके साम्राज्यवादियों को करारी चोट दे सकते थे।

दुनिया के तमाम प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने नयी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन करते हुए यह नतीजा निकाला कि यदि समाजवादी शिविर को अपनी अर्थ-व्यवस्था का विकास करने के लिए शान्ति का सांस मिल जाय तथा नये स्वाधीन राष्ट्रों को अपने अर्थतन्त्र का विकास करने के लिए समाजवादी व्यवस्था से सहयोग ले कर विकास करने का अवसर मिले और साथ ही वे मुल्क भी जिन्हें स्वतन्त्रता नहीं मिली है, स्वतन्त्र हो जायं तो पूरे संसार की जनता को साम्राज्यवादी शोषण और युद्ध के आतंक से बचाया जा सकता है।

समाजवादी शिविर तथा विकसित पूंजीवादी देशों के प्रगतिशील लोगों के अलावा गुटनिरपेक्ष देशों के लोगों ने और विशेष रूप से पं० नेहरू ने इस नीति को मान्यता प्रदान की।

इस अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन करके जो नतीजे निकाले गये थे वे बहुत उत्साहबर्द्धक थे।

दो समानान्तर विश्व व्यवस्थायें अर्थात् समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्था सिद्धान्त रूप से साथ-साथ रह सकती हैं और आपसी होड़ के जरिये समाजवादी व्यवस्था पूजीवादी व्यवस्था को पछाड़ सकती है। साम्राज्यवाद इतना कमजोर हो गया कि वह पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के रास्ते को रोक नहीं सकता। क्यूबा, उत्तरी वियतनाम, उत्तरी कोरिया और जर्मन जनवादी गणतन्त्र इसके उदाहरण हैं।

साम्राज्यवाद यद्यपि निरन्तर उकसावे पैदा करता रहता है और तीसरा युद्ध छेड़ना चाहता है, परन्तु शान्ति की ताकतें पहले के मुकाबिले अब बहुत मजबूत हो गई हैं और इसीलिए वे मिल कर युद्ध को टाल सकती हैं। युद्ध अनिवार्य नहीं रह गया है।

किसी देश-विशेष में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का कायाकल्प करते

समय संसार के स्वाधीन मुल्क और समाजवादी शिविर एक-दूसरे की सहायता कर सकते हैं और कर रहे हैं। इससे साम्राज्यवादियों के लिए एक ओर तो किसी देश की नाकेबन्दी करना असम्भव हो गया है और दूसरी ओर एक दूसरे से सहयोग करके ये मुल्क अपने मुल्क की जनता पर विकास का असह्य भार डाले बिना ही उन्नति कर सकते हैं और उसका लाभ साथ ही साथ जनता को पहुंचा सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का यह मूल्यांकन नई वैज्ञानिक समझ पर आधारित था। और इस समझ ने पूरे समाजवादी शिविर, सारे संसार के स्वाधीन राष्ट्रों, राष्ट्रीय आन्दोलनों तथा विकसित पूंजीवादी देशों के प्रगतिशील लोगों को एक सूत्र में पिरो दिया और साम्राज्यवाद को और भी गहरा धक्का लगा कर पीछे हटने को मजबूर कर दिया।

परन्तु चीनी नेताओं ने इस समझ के खिलाफ जो नतीजे निकाले उससे पूरे संसार के प्रगतिशील आन्दोलनों में कमजोरी आई। १९६० से ही वे ये बातें कहते आ रहे हैं :

१—दो समानान्तर विश्व व्यवस्थायें साथ-साथ नहीं चल सकतीं।

२—पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण शान्तिपूर्वक नहीं हो सकता। समाजवाद की स्थापना के लिए खूनी क्रान्ति अनिवार्य है।

३—साम्राज्यवाद चाहे जितना कमजोर हो गया हो उसे युद्ध करने से रोका नहीं जा सकता। और युद्ध अनिवार्य है।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की चीनी नेताओं की यह समझ देखने में जितनी चमकीली-भड़कीली प्रतीत होती है अन्दर से वह उतनी ही कायरतापूर्ण है।

यह अजीब मार्क्सवाद है !

चीनी नेता मार्क्सवाद को विज्ञान नहीं समझते। जैसे किसी व्यक्ति का बपितस्मा हो जाने मात्र से वह ईसाई मान लिया जाता है,

इसी प्रकार मार्क्सवाद का जाप करने मात्र से कोई व्यक्ति मार्क्सवादी हो जाता है, यह चीनी धारणा है। एक बार कार्ल मार्क्स के दामाद लाफार्ग ने मार्क्सवाद की ऐसी व्याख्या कर डाली थी कि उस पर बिगड़ कर कार्ल मार्क्स ने कहा था :

"यदि यही मार्क्सवाद है तो मैं मार्क्सवादी नहीं हूं।"

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लाफार्ग मार्क्सवाद नहीं समझते थे। वास्तव में उन्होंने वस्तुगत परिस्थिति की ऐसी विवेचना करदी थी जो मनोगत अधिक थी और वस्तुगत परिस्थिति से कम मेल खाती थी! सच्चा मार्क्सवाद वही है जो परिस्थिति का सही मूल्यांकन करके आन्दोलन को आगे बढ़ाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की विवेचना करने के लिये परिस्थिति की विवेचना करना आवश्यक है। परन्तु माओपंथियों ने चीन के सामाजिक जीवन में होने वाले आंशिक और क्रमिक परिवर्तनों की कभी गम्भीर विवेचना नहीं की। यदि हम यह कहें कि जिन सिद्धान्तों का वे शोर मचाते हैं, उन सिद्धान्तों का अध्ययन तक उन्होंने नहीं किया है तो हमारा यह कहना गलत नहीं होगा।

"सर्वहारा अधिनायकत्व," "विचारों की स्वतन्त्रता," "क्रान्ति विरोधी," "माओ-त्से-तुंग के विचार," "लम्बी छलांग," "जन कम्यून," "शानदार निर्देश" "अन्तर्विरोध" और "कम्युनिज्म" ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्द हैं जिनका प्रयोग माओपंथी जिस समझ के साथ करते हैं उनका सम्बन्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद से नहीं हो सकता।

नीचे हम उनकी सिद्धान्तहीनता के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों पर विचार करेंगे।

सर्वहारा अधिनायकत्व

जिस समय कार्ल मार्क्स और लेनिन ने इस पारिभाषिक शब्द का

प्रयोग किया उस समय उनके चिन्तन में यूरोप का राजनीतिक इतिहास रहा है। पिछले कई सौ वर्षों मे यूरोप के राजनीतिक जीवन में यदि एक सत्ताधारी दल रहा है तो साथ ही वहां मान्यता-प्राप्त विरोधी दल भी काम करता रहा है। समाजवादी क्रान्ति की कल्पना करते समय इन क्रान्तिकारियों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि पुरानी शासन प्रणाली, शासनतन्त्र या नौकरशाही के रहते हुए पूंजीवादी व्यवस्था से समाजवाद की अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना सम्भव नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने मजदूर वर्ग को कुछ समय के लिए परम्परागत ढंग से चली आ रही शासन पद्धति का परित्याग करके शासन के सब अधिकार अपने हाथ में लेने की बात कही थी। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया था कि यह अधिनायकत्व केवल संक्रमणकालीन है। जब तक पूंजीवादी तत्वों के जरिये तोड़-फोड़ करने की आशंका रहती है तभी तक ये अधिकार इस्तेमाल किये जा सकते हैं। समाजवाद की पूर्ण विजय के बाद मजदूर वर्ग की यह विशेष स्थिति समाप्त हो जाती है। मजदूर वर्ग को उन्होंने यह विशेष दर्जा इसलिए दिया था कि सम्पत्ति-हीन होने के कारण वह निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त की पुनः स्थापना में दिलचस्पी नहीं लेगा।

यह धारणा भी दो कारणों से थी। एक तो यूरोप के इतिहास में ऐसे अनेक अवसर आ चुके हैं जब किसी सैनिक ने विशेष परिस्थितियों में सर्वाधिकार अपने हाथों में ले लिए। परन्तु उस विशेष स्थिति के समाप्त होते ही उसने अपने विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया और वह आम नागरिकों की तरह रहने लगा था। दूसरे, इस अधिनायकत्व का मतलब निरंकुशता कदापि नहीं है और न यह अधिनायकत्व किसी व्यक्ति विशेष का होता है। केवल क्रान्ति की रक्षा के लिए समूचा क्रान्तिकारी वर्ग अपने हाथों में विशेषाधिकर लेता है ओर वह भी अस्थायी रूप में।

परन्तु चीनी नेताओं ने अधिनायकत्व का अर्थ "निरंकुशता" समझा और माओपंथियों का सम्पूर्ण साहित्य न केवल आर्थिक रूप में बल्कि शाब्दिक रूप में भी अधिनायक शब्द को निरंकुशता के रूप में ग्रहण करता है।

कार्ल मार्क्स और लेनिन ने इस कार्यनीति का नाम बोनापार्टिज्म रखा था। बोनापार्टिज्म ने क्रान्ति के बीच जन्म लिया था और उसे क्रान्ति की रक्षा करनी चाहिए थी। परन्तु उसने क्रान्ति की नहीं, आगे चलकर प्रतिक्रियावाद की रक्षा की। लेनिन ने रूसी क्रान्ति में करेंस्की-वाद को भी बोनापार्टिज्म का रूप बताया था। और आज के युग में माओवाद दूसरा बोनापार्टिज्म है जो सेना का सहारा लेता है, वर्गों और राष्ट्रों के बीच पैंतरेबाजी करता है, क्रान्ति के गीत गाता है, परन्तु क्रान्तियों के साथ विश्वासघात करता है।

मार्क्स ने व्यक्ति-पूजा के प्रति बहुत कठोर विचार व्यक्त किये हैं और उन्होंने "सर्वोच्च नेता" की धारणा को बोनापार्टिज्म का लक्षण बताया है। माओवादियों ने माओ त्से-तुंग को सर्वोच्च नेता के पद पर प्रतिष्ठित करके तथा उनके कन्फ्यूशियस परम्परा वाले त्रात्सकीवादी विचारों को मार्क्सवाद के नाम पर प्रतिष्ठित करके जो "बैरक कम्यु-निज्म" की स्थापना की है उसका मार्क्सवाद-लेनिनवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए सर्वहारा अधिनायकत्व के नाम पर माओ-पंथियों ने चीन में माओ त्से-तुंग गुट की निरंकुशता कायम की है और यह निरंकुशता सर्वहारा वर्ग को राजनीति से दूर खदेड़ रही है तथा पूरी राज्यसत्ता को उसका दमन करने के लिए इस्तेमाल कर रही है।

यदि सर्वहारा अधिनायकत्व का यही अर्थ है, जिसका माओवादी प्रचार करते हैं तो क्या मार्क्स और लेनिन अधिनायकत्व के स्थान पर निरंकुशता के शब्द का इस्तेमाल नहीं करते ?

अधिनायकत्व का निरंकुशता के रूप में बदल जाना दो कारणों से

सम्भव हुआ। एक तो परम्परागत रूप से चीन में हजारों वर्षों से कोई विरोधी पक्ष नहीं रहा। राजनीति में केवल सत्ताधारी पक्ष था। और शेष सभी लोगों को शासन के प्रति नत-मस्तक होना पड़ता था। जो विरोधी होता था उसे केवल बागी या षड्यन्त्रकारी अथवा विद्रोही कहा जाता था। इसी आधार पर बंगलादेश की मुक्ति के आन्दोलन को बागियों की जमात कहा गया और उसे षड्यन्त्र कहकर पुकारा गया। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में जब तक माओ त्से-तुंग का गुट अल्पमत में रहा, मौन रहकर कम्युनिस्ट पार्टी में षड्यन्त्र करता रहा। परन्तु सत्ता में आने के बाद माओपंथियों ने अल्पसंख्यक कम्युनिस्टों को "षड्यन्त्रकारी" और "संशोधनवादी" कह कर पुकारना शुरू कर दिया और उन्हें निर्मूल कर दिया। दूसरे, माओपंथियों ने क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद को कभी गम्भीरतापूर्वक पढ़ने और समझने की कोशिश नहीं की।

कन्फ्यूशियसवाद का अनुसरण

बहुत से प्रगतिशील लोगों को माओपंथियों के इस कथन पर आश्चर्य होता है कि वे चीनी जनता को कोरा कागज या "स्लेट" समझते हैं और उनका यह विश्वास है कि इस कोरे कागज पर कोई भी अच्छा या बुरा चित्र अंकित किया जा सकता है। यदि पूरे चीन में इस धारणा को मान्यता प्राप्त हो गई है तो इसका एक ऐतिहासिक कारण है। कन्फ्यूशियस अपने दर्शन में सदा ही यह प्रचार करते रहे कि प्रजा को अनुशासन में रहना चाहिए। और शासन के प्रति नत-मस्तक होना उसका पुनीत कर्त्तव्य है। शासन समाज को व्यवस्थित रखता है और समाज का प्रत्येक व्यक्ति शासन की इच्छाओं के अनुसार चलता है। परन्तु यही सिद्धान्त यदि भारतीय जनता के सम्मुख रखा जाय तो वह इसे स्वीकार नहीं करेगी। हजारों वर्षों के इतिहास में भारतीय जनता

ने शासन के मुकाबिले बुद्धि को ही अधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में किसी भी बड़े से बड़े चक्रवर्ती राजा का भी उतना सम्मान नहीं था जितना झोंपड़ियों में रहने वाले ऋषि-मुनियों और विद्वानों का था। इन राजाओं और चक्रवर्तियों को भी प्रजा में अपनी स्थिति मजबूत रखने के लिए इन ऋषियों का आशीर्वाद लेना आवश्यक था। परन्तु चीन के प्राचीन इतिहास में जिसका दर्शन कन्फ्यूशियसवाद है, सम्राट का महत्व सर्वोपरि था। यह सम्राट अपनी प्रजा का भाग्य-विधाता माना जाता था। अब अन्तर केवल इतना हो गया है कि पहले सम्राट भाग्य विधाता थे और अब माओ-पंथी भाग्य विधाता बन गये हैं। उसी धारणा के आधार पर चीनी जनता को "कोरा कागज" समझा जाता है। और इस कोरे कागज पर माओपंथी आजकल अच्छे तो नहीं, भद्दे चित्र ज़रूर अंकित कर रहे हैं।

परन्तु भारतीय जनता पर कोई मनमाने ढंग से अच्छे या भद्दे चित्र अंकित नहीं कर सकता। इसलिए कि भारतीय जनता कोरा कागज नहीं है। यहां पुरानी संस्कृति के गर्भ से नई संस्कृति और पुरानी अर्थ-व्यवस्था के गर्भ से नई अर्थ-व्यवस्था के जन्म लेने के मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार जो कुछ भी परिवर्तन हो रहा है वह शून्य में से नहीं हो रहा है। और इसलिए किसी चित्रकार को चित्र अंकित करने से पहले इस कागज का अध्ययन कर लेना परम अनिवार्य है, जिस पर पहले ही बहुत से चित्र अंकित हैं।

एक बार एक छात्र ने कन्फ्यूशियस से पूछा :

अच्छे शासन की क्या शर्तें हैं ?

कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया। इसकी तीन शर्तें हैं :

१. जनता को अच्छा खाना-पीना मिलना चाहिए,

२. एक अच्छी सेना होनी चाहिए,

३. जनता का सरकार पर विश्वास होना चाहिए।

छात्र ने पूछा :—तीन में से किसको आसानी से छोड़ा जा सकता है ? कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया :—सेना को।

फिर छात्र ने पूछा :—बाकी दो में से किसको आसानी से छोड़ा जा सकता है ?

कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया :—भोजन-वस्त्र छोड़ा जा सकता है।

अनन्त-काल से लोग मरते आये हैं और मरते रहेंगे। यदि शासन पर विश्वास न रहा तो सब-कुछ ढह जायेगा।

आज शासन को मजबूत करने के लिए चीन में सभी कुछ कुर्बान किया जा रहा है।

यदि यही प्रश्न कन्फ्युशियस के अलावा किसी भारतीय दार्शनिक से पूछे जाते तो वह क्या उत्तर देता ?

उसका उत्तर होता :—सरकार पर चाहे विश्वास रहे या न रहे, सेना रहे या भंग कर दी जाय, परन्तु प्रजा के हितों की रक्षा होनी चाहिए। इसलिए कि शासकों के बिना भी सतयुग और द्वापर में समाज रहे हैं तथा शान्ति और व्यवस्था भी कायम रही है। इसी प्रकार, मार्क्स-वाद और लेनिनवाद जिस सामाजिक लक्ष्य को लेकर चलते हैं उसमें राज्य सत्ता, जोकि हिंसा का साधन है, खत्म हो जाती है और एक वर्ग-हीन तथा राज्यविहीन समाज-व्यवस्था ही उनके जीवन का लक्ष्य था। परन्तु ये मार्क्सवाद के नाम पर कन्फ्यूशियसवाद का प्रचार करने वाले शासन को ऐसा रूप दे रहे हैं जिसमें वह सब चीजों पर छाया हुआ है।

वास्तव में यह सैद्धान्तिक भटकाव चीन की पुरानी परम्पराओं में कायम है। वहां एक भी ऐसा उदाहरण सुनने को नहीं मिलता जहां किसी व्यक्ति ने प्रेम और स्वतन्त्रता की भावनाओं से प्रेरित होकर सामाजिक बन्धनों का तिरष्कार कर दिया हो। वहां ऐसे हजारों उदा-हरण मिल सकते हैं जहां माता-पिता के प्रति उनके बच्चों ने, बड़े भाई के प्रति छोटे भाई ने और पति के प्रति उसकी पत्नी ने अधिक से अधिक

बलिदान किया हो। परन्तु वहां किसी मीरा ने हँसते-खेलते जहर का प्याला नहीं पिया। कृष्ण की विरहिणी किसी राधा ने पूरी सामाजिक रूढियों के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं दिखाया। अपने अपमान का बदला लेने के लिए महाभारत रचने वाली द्रौपदी का उदाहरण वहां नहीं है। और न वहां कोई हीर व रांझा है।

चीनी साहित्य और परम्पराएं केवल ऐसे सम्राट की कल्पना करती हैं, जो प्रजा के लिए पिता के समान दयालु है, और उसके दुःख-दर्द की कल्पना में आहें भरता रहता है। परन्तु आमतौर पर इन सम्राटों ने कभी प्रजा को नहीं बख्शा और उसके अस्थि-कंकालों पर अपने राज-महलों का निर्माण किया। फिर भी चीनी साहित्य उन्हें पिता के समान मानने के लिए मजबूर करता है और माओपंथी उसी परम्परा को निभा रहे हैं।

सामाजिक परिस्थितियां सामाजिक क्रान्तियों के लिए भौतिक आधार तैयार करती हैं, और क्रान्तिकारी सिद्धान्त तथा संगठन क्रान्ति के मुख्य वाहन बनते हैं। जैसे केवल भौतिक परिस्थितियां क्रान्ति को सफलता की मंजिल तक नहीं पहुंचा सकतीं, उसी प्रकार केवल क्रान्तिकारी सिद्धान्त और संगठन अनुकूल भौतिक परिस्थिति के अभाव में क्रान्ति सफल नहीं कर सकते। १९०५ की क्रान्ति से लेकर १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति तक लेनिन ने लम्बे युग तक परिस्थितियों तथा सिद्धान्त और संगठन में परिपक्वता एवं सामंजस्य लाने के लिए संघर्ष किया। दोनों के बीच सामंजस्य कायम होते ही लेनिन की यह चमत्कारपूर्ण घोषणा पूरे रूसी समाज पर बिजली की तरह कौंध गई :

"यदि हम ६ नवम्बर को क्रान्ति शुरू करते हैं तो बहुत जल्दी कर देंगे। और यदि ८ नवम्बर को शुरू करते हैं तो बहुत विलम्ब हो जायेगा। ७ नवम्बर का दिन बहुत उपयोगी है।"

यदि लेनिन रूसी समाज को 'कोरा कागज' समझते होते तो इतनी

कष्टप्रद प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी। यह काम वे अपनी सुविधा के अनुसार चाहे जब कर सकते थे।

लेनिन और माओ त्से-तुंग की मार्क्सवाद सम्बन्धी धारणाओं में यही मौलिक अन्तर है। लेनिन की धारणा वैज्ञानिक समाजवाद पर आधारित है और माओपंथियों की समझ पितृ-सत्ता प्रधान कन्फ्यूशियसवाद का आधुनिक संस्करण है।

हिंसा और माओवाद

जिन लोगों ने सांस्कृतिक क्रान्ति के रूप में चीन में उभरती हुई अराजकता देखी है या सुनी है वे लोग यह प्रश्न करते हैं कि इस भयानक सामाजिक उत्पात का सैद्धान्तिक आधार क्या हो सकता है? मार्क्सवाद-लेनिनवाद में, जिसकी दुहाई माओपंथी देते हैं, ऐसे उपद्रवों की और नग्न हिंसा की कहीं गुंजायश नहीं है। क्रान्ति सामाजिक आवश्यकता है और वह घृणा पर आधारित नहीं हो सकती। यही कारण है कि दुनिया की सबसे पहली समाजवादी क्रान्ति में, सोवियत संघ में कम से कम रक्तपात हुआ, और यदि क्रान्तिकारियों ने प्रतिशोध लेने के लिए जमींदारों तथा पूंजीपतियों के साथ अनावश्यक हिंसा का सहारा लिया तो लेनिन ने कड़े शब्दों में उसका विरोध किया।

विपरीत इसके, माओपंथी सामाजिक क्रान्ति के लिए हिंसा को अनिवार्य बताते हैं। इससे भी आगे बढ़कर वे यह दावा करते हैं कि जितना ही अधिक रक्तपात होगा, क्रान्ति उतनी ही "खरी-शुद्ध" होगी। क्रान्ति के लिए उन्होंने कुछ अद्भुत मुहावरों का आविष्कार किया है।

"बरछी के मुकाबले बरछी", "सत्ता तोप के दहाने से निकलती है," "परमाणु बम कागजी गोला है", "अमरीकी साम्राज्यवाद कागजी शेर है"।

इस प्रकार एक ओर तो माओपंथी जनान्दोलन, जनचेतना, जन-

संगठन और क्रान्ति की भौतिक परिस्थितियों को नजरन्दाज करके क्रान्ति की सफलता के लिए हथियारों तथा हिंसा पर जरूरत से ज्यादा जोर देते हैं और दूसरी ओर जब उनकी विरोधी ताकतें और भी अधिक हिंसा के साधनों का प्रदर्शन करती हैं तब वे उनको कागज का गोला और कागज का शेर बताने लगते हैं। ये परस्पर विरोधी दावे उनकी नासमझी के परिणाम हैं। क्या वस्तुतः क्रान्ति और राजनीतिक सत्ता तोप के दहाने से निकलती है? तोपों के मुंह से क्रान्तियां कभी जन्म नहीं लेती बल्कि क्रान्तिकारी सामाजिक ताकतें प्रति-क्रान्ति की तोपों का मुकाबला करने के लिए तोपों का इस्तेमाल करती हैं। क्रांति तोप के मुंह से जन्म नहीं लेती। उसका जन्म जनचेतना और जन संघर्षों के जरिये होता है।

इसी प्रकार, यद्यपि यह सही है कि परमाणु बम सबसे पहले साम्राज्यवादियों के इस्तेमाल में आया। परमाणु बम दिखा कर साम्राज्यवादी ताकतें राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों और समाजवादी शिविर को भयभीत करना चाहती थीं। इसके जवाब में एक ओर तो दुनिया के प्रगतिशील लोगों ने परमाणु बमों के प्रयोग पर पाबन्दी लगाने के लिए विश्व जनमत तैयार किया जिसमें हमारे स्वर्गीय प्रधान-मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया और दूसरी ओर समाजवादी ताकतों ने भी परमाणु बमों का आविष्कार करके साम्राज्यवादियों के आतंक को प्रभावहीन कर दिया। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि परमाणु बम कागज का गोला है और साम्राज्यवादी कागज के चीते हैं। यदि परमाणु बम कागज का गोला होता तो हिरोशिमा और नागासाकी पर वह भयंकर प्रलय न मचा पाता। और यदि साम्राज्यवाद कागज का चीता होता तो चीन पर तथा पूरे एशिया और संसार पर इतना दमन और शोषण न कर पाता। उसने आज भी वह शोषण और हिंसा बन्द नहीं की है।

माओ त्से-तुंग क्योंकि आधुनिक चीन के जटिल वर्ग सम्बन्धों के बीच कोई सुसंगत दिशा नहीं निकाल पाते और क्रान्तिकारी वर्ग शक्तियों के मेल-मिलाप का कार्यक्रम बनाने में असमर्थ हैं, इसीलिए मिथ्या क्रान्तिकारी नारों की ओट में अपनी कुण्ठा छिपाते हैं। चीन में अन्त-र्विरोध बड़े पैमाने पर आज भी काम कर रहे हैं, और माओ त्से-तुंग का गुट इन अन्तर्विरोधों से भयभीत है। उन्हें शान्त करने के लिए माओ-पंथी ऐसे नारे लगाते हैं जो उन पर पर्दा डालते रहें।

मार्क्सवाद का चीनीकरण

अपने विचारों के गलत स्वरूप छिपाने के लिए माओपंथी मार्क्स-वादी शब्दावली का व्यापक रूप में प्रयोग करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि बहुत लम्बे अर्से तक माओ त्से-तुंग अपने बारे में मार्क्सवादी होने का भ्रम पैदा करने में कामयाब रहे हैं। परन्तु वे अपनी असलियत को भलीभांति समझते हैं और इसी कारण १९३८ में ही उन्होंने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था :

"इसके पहले कि मार्क्सवाद को क्रियान्वित किया जाय, यह जरूरी है कि वह राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर ले, अमूर्त मार्क्सवाद जैसी धारणा का कोई अस्तित्व नहीं है, केवल ठोस मार्क्सवाद का अस्तित्व है। जिसे हम ठोस मार्क्सवाद कहते हैं वह ऐसा मार्क्सवाद है जिसने राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया है।" (चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के १९३८ के अधिवेशन में माओ के विचार)।

आगे चल कर माओ ने चीन की विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर मार्क्सवाद का "चीनीकरण" करने का बीड़ा उठाया। माओपंथी यह कहते कभी नहीं थकते कि माओ त्से-तुंग के विचारों ने ही चीनी क्रान्ति को विजय की मंजिल तक पहुंचाया है। १९४९ में माओवादियों ने कहना शुरू किया कि माओ त्से-तुंग के विचार सभी औपनिवेशिक और

पराधीन देशों के लिए आदर्श हैं"। माओपंथियों ने यह दावा किया कि "एशिया, अफ्रीका लैटिन अमरीका और तमाम उन भूखण्डों की जनता के लिए जो सम्राज्यवाद से संघर्ष कर रही है, माओ त्से-तुंग के विचार आदर्श हैं।" १९५८ के बाद माओपंथियों ने पूरी साम्यवादी दुनिया के लिए माओ को नेता घोषित किया। और १९६० में लिन प्याओ ने माओ त्से-तुंग के विचारों को इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद बताया। परन्तु १९६८ के बाद माओ के विचार स्वतन्त्र विचार-प्रणाली के रूप में कहे जाने लगे और उनको वही मान्यता दी जाने लगी, जो किसी ज़माने में मार्क्स और लेनिन की थी।

पं० जवाहरलाल नेहरू और दूसरे प्रगतिशील नेताओं ने यह कभी नहीं माना कि मार्क्सवाद और लेनिनवाद या अन्य भी कोई क्रान्तिकारी विचारधारा किसी देश की सीमाओं में बन्दी बनाई जा सकती है। माओपंथियों ने पहले तो मार्क्सवाद को राष्ट्रीय सीमाओं का बन्दी बनाया, उसका चीनीकरण किया और बाद में निम्न-पूंजीवादी दुस्साहसवाद के रूप में अब उसे पूरी दुनिया पर थोपना चाहते हैं।

आश्चर्य है कि इस प्रकार मार्क्सवाद को राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर बन्दी बनाकर और उसके वैज्ञानिक रूपों का अंग-भंग करके माओ त्से-तुंग ने जो निम्न पूंजीवादी दुस्साहसवाद चीनीकृत मार्क्सवाद के रूप में प्रस्तुत किया है उसे ही वे पूरे एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीकी राष्ट्रों में मुक्ति के एकमात्र सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु पिछले २० वर्षों में यह विचारधारा किसी भी देश की मुक्ति के आन्दोलन में सहायक होने के स्थान पर रोड़े अटकाती रही और फिर भी माओ त्से-तुंग के चेले अपने हवाई दावे दोहराते जा रहे हैं।

एक स्थान पर माओ त्से-तुंग ने यह भी दावा किया है कि "मैंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन संघर्षों के माध्यम से किया है।"

यह धारणा कितनी खतरनाक है। मार्क्सवाद और लेनिनवाद का ज्ञान एक बौद्धिक संघर्ष है और वह गंभीर अध्ययन तथा विवेचना से सम्बन्ध रखता है। केवल वर्ग संघर्षों में भाग लेने से कोई मार्क्सवाद का अच्छा पंडित नहीं हो जाता। मजदूर वर्ग अपने वर्ग संघर्षों के जरिये केवल ट्रेड यूनियन चेतना तो प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु इतने मात्र से वे अच्छे क्रान्तिकारी सिद्धान्तशास्त्री नहीं हो जाते। उनमें यह चेतना मार्क्सवाद के अध्ययन से ही आती है। परन्तु श्री माओ त्से-तुंग केवल "बरछी के मुकाबिले बरछी" चलाते-चलाते मार्क्सवाद में प्रकाण्ड पंडित हो गये हैं।

शहर और देहात का संघर्ष

पूरी दुनिया के क्रान्तिकारियों ने शहर और देहात के चरित्र के सम्बन्ध में विश्लेषण करते हुए शहरों को उदीयमान व्यवस्थाओं का केन्द्र समझा है। एक जमाना था जब यूरोप में पूंजीवाद का विकास शुरू हुआ तो पूंजीवाद की वृद्धि के साथ-साथ मजदूर वर्ग की संख्या में वृद्धि होती थी। क्रान्तिकारियों ने इसका यह अर्थ लगाया था कि पूंजीपति वर्ग अपनी कब्र खोदने वाले पैदा करता जाता है। यह कल्पना भी की गई थी कि विकसित पूंजीवादी देशों में समाजवाद की स्थापना सबसे पहले होगी। और इस भविष्यवाणी का आधार काल्पनिक नहीं था। इस सामाजिक विवेचना पर यह धारणा आधारित थी कि पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ जनसंख्या में मजदूर वर्ग का औसत बढ़ता जाता था, और यह मजदूर वर्ग राजनीतिक दृष्टि से समाजवादी विचारधारा के वाहन हैं तथा अर्थ-व्यवस्था के रूप में सामाजिक सम्पत्ति के संस्थापक हैं। आगे चल कर दूसरे देशों में माल के साथ-साथ जब पूंजी का निर्यात किया जाने लगा तो साम्राज्यवादी अर्थ-व्यवस्था ने अपने पांव फैलाये। विकसित पूंजीवादी देशों के पूंजीपति अपनी व्यवस्था का

संकट उपनिवेशों की जनता पर टाल कर और औपनिवेशिक जनता के शोषण का कुछ अंश अपने देश की जनता में बांटकर उनका असन्तोष कम करने में कामयाव हो जाते थे। इस नई परिस्थिति में यह धारणा वन गई कि अब क्रान्ति उन मुल्कों में पहले होगी जहां साम्राज्यवाद की कड़ी सबसे कमजोर होगी। इस सिद्धान्त से यह सम्भावना अधिक प्रभावशाली साबित हुई कि विकसित पूंजीवादी देशों के मुकाबले अल्प विकसित देशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के माध्यम से समाजवादी क्रान्ति पहले हो सकती है। परन्तु इस धारणा के बावजूद क्रान्ति में औद्योगिक मजदूर वर्ग के विशेष स्थान की महत्ता कम नहीं हुई।

चीन में माओपंथियों ने इस सैद्धान्तिक धारणा को तोड़-मरोड़ कर ऐसा विकृत रूप दे दिया कि सारा संघर्ष जैसे भोगोलिक हो गया हो और समाजवादी क्रान्ति की सफलता के लिए वर्गों का महत्त्व नगण्य कर दिया गया।

इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को तोड़-मरोड़कर रखते हुए माओ-वादियों ने शहरों को पूंजीवाद का या प्रतिक्रियावाद का दुर्ग साबित कर दिया और देहात को क्रान्तिकारिता का या समाजवादी आन्दोलन का आधार साबित करने की कोशिश की। यदि हम हिन्दुस्तान की उन प्रतिक्रियावादी पार्टियों के प्रचार से इसकी तुलना करें तो बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं होगा जो असली राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों पर पर्दा डालने के लिए शहर और देहात के झगड़ों की चर्चा करते हैं। ये प्रतिक्रियावादी सामन्त अपने आपको देहात का यानी गरीबी का प्रतीक बताते हैं और शहर को खुशहाली का प्रतीक कहते हैं। वास्त-विकता इसके विपरीत है। शहरों में जहां नये शोषकों के, पुंजीपतियों के केन्द्र हैं, वहां नई समाज व्यवस्था के सुसंगत पैरोकार मजदूर भी रहते हैं। परन्तु देहात शब्द से उनकी मुराद केवल प्रतिक्रियावादी सामन्तों और धनी किसानों से होती है। इसलिए कि खेत मजदूरों और छोटे

किसानों को न तो वे देहात का प्रतिनिधि समझते हैं और न वे होते हैं। यदि देहाती समाज का बहुमत शहरों के पुंजीपतियों के साथ जुड़ जाता है तो प्रतिक्रियावाद और बर्बादी फूलती-फलती है और यदि उनका सम्पर्क औद्योगिक मजदूर वर्ग के साथ होता है तो प्रगतिशील जनान्दोलन फलता-फूलता है।

माओपंथी इस सनसनीखेज सच्चाई को गर्म-गर्म लफ्फाजी में छिपाने की कोशिश करते हैं। पहले तो वे चीनी क्रान्ति के अनुभवों को पूरे संसार पर थोपने की कोशिश करते हैं। चीनी क्रान्ति की सबसे बड़ी विफलता यही है कि एक तो चीन में औद्योगिक मजदूर वर्ग था ही कम, और जो था भी वह उन बड़े-बड़े नगरों में सीमित था जहां कुमिनतांग का शासन था। चीन के मुक्ति आन्दोलन की ताकतें इस मजदूर वर्ग की सैद्धान्तिक चेतना से कटी हुई थीं। और इसीलिए मजदूर वर्ग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का चीनी क्रान्ति पर बहुत कम प्रभाव पड़ा था। और उसी का नतीजा आज पूरे चीन में देखने को मिल रहा है जहां निम्न-पूंजीवादी प्रभाव अपनी पराकाष्ठा पर है।

शहर और देहात के भेद को क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति का भेद बताते हुए माओवादियों ने क्रान्ति के और प्रति-क्रान्ति के क्षेत्रों को वर्गीय आधार पर नहीं बांटा। उन्होंने इसे भौगोलिक आधार पर बांटते हुए एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के अल्प विकसित देशों को देहात मान लिया और यूरोप तथा अमरीका के देशों को शहर मानकर ऐसी विवेचना की है जिसके अनुसार क्रान्तिकारी देहात प्रतिक्रियावादी शहरों को घेरकर धराशायी करेंगे। यह बहुत खतरनाक और प्रतिक्रियावादी सैद्धान्तिक धारणा है।

तो क्या जापान, दक्षिणी कोरिया, दक्षिणी वियतनाम, और पाकिस्तान की सैनिक तानाशाही इसीलिए क्रान्तिकारी मान ली जाय कि वे एशियाई भूखण्ड में विद्यमान हैं। इसी तरह, क्या सोवियत संघ

और विकसित पूंजीवादी देशों का मजदूर वर्ग और बुद्धिजीवी लोग केवल यह सोचकर प्रतिक्रियावादी मान लिये जाएं कि वे यूरोप तथा अमरीका के रहने वाले हैं। यह एक खतरनाक धारणा है और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों को अपने जबर्दस्त सहयोगियों से अलग काटकर साम्राज्यवाद की दलाली करती है। वर्तमान वियतनाम मुक्ति संग्राम में खुद अमरीकी जनता ने युद्ध के विरोध में श्री निक्सन के खिलाफ जो आन्दोलन किये उनका क्रान्तिकारी महत्व कम करके नहीं आंका जा सकता।

इतना ही नहीं, माओपंथियों ने दुनिया के शहर और देहात के अलावा एक मध्यवर्ती क्षेत्र की भी कल्पना की है। यह ऐसा क्षेत्र है जो शहर और देहात के बीच में स्थित है।

चीनी बुद्धिजीवी परम्परागत रूप से वितण्डावादी रहे हैं। क्रान्तिकारी सिद्धान्त में उनका यह वैसा ही नया वितण्डवाद है।

उपनिवेशवादियों से सहयोग

धीरे-धीरे अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि चीन की सरकार पथभ्रष्ट है। वहां तस्करों का स्वर्ग है। तस्करों का न कोई देश होता है, न जाति, न धर्म होता है। तस्करों का काम है, जैसे भी हो धन कमाओ। एशिया के तमाम बड़े-बड़े मुल्क उपनिवेशवादियों के चंगुल से मुक्ति पा चुके हैं। परन्तु चीन ऐसा अभागा मुल्क है जहां आज भी उपनिवेशवादी सीना तानकर घूमते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि माओपंथी सारी दुनिया में उपनिवेशवाद खत्म करने के उपदेश देते हैं और अपने यहां उन्होंने उपनिवेशवादियों को मेहमान बना रखा है।

चीनी युद्ध-सामन्त असुरी नदी पर सोवियत संघ से जा टकराये, नेफा और लद्दाख में हमसे आ भिड़े और अपने तमाम पड़ोसियों को

रोजाना धमकाते रहते हैं। परन्तु हांगकांग में बैठे हुए ब्रिटिश उपनिवेश-वादियों को वे कभी नहीं धमकाते। यह अकारण नहीं है। चीनी बैंकों को उनकी जरूरत की लगभग आधी मूल्यवान विदेशी मुद्रा हांगकांग के जरिये हासिल होती है। चीन हांगकांग को जो सामान भेजता है उससे चीन को ३४ करोड़ डालर सालाना मिलते हैं। और इसी तरह विदेशों में रहने वाले चीनी हांगकांग के बैंकों में २० करोड़ डालर सालाना जमा करते हैं और वे चीन को प्राप्त हो जाते हैं।

हांगकांग युगों पुराना चीनी क्षेत्र है जिस पर ब्रिटेन ने कब्जा कर लिया था। उसमें १०१३ वर्ग किलोमीटर के अनेक द्वीप हैं। उसकी जनसंख्या ३५ लाख है जिसमें ९९ प्रतिशत चीनी हैं। इनमें से ८० हजार चीनी रात में सड़कों पर सोते हैं और ढाई लाख रैन-बसेरों में रात गुजारते हैं।

ब्रिटिश पूंजीपति हांगकांग की जनता का निर्मम शोषण करके भारी मुनाफा कमाते हैं। यह छोटा-सा उपनिवेश सब तरह के व्यापारियों, जिनमें तस्कर व्यापारी विशेष स्थान रखते हैं, और सट्टेबाजों के लिए सोने की खान बन गया है। विदेशों की एजेन्सियों के अनुसार हांगकांग नशीली चीजों के तस्कर व्यापार का विश्व में सबसे बड़ा केन्द्र है। यहां से अफीम, हशीस, मार्फिन और हेरोइन को एशिया के अनेक देशों तथा यूरोप और अमरीका को चोरी-छुपे भेजा जाता है।

चीन का सरकारी विदेश व्यापार विभाग हांगकांग के साथ जम-कर व्यापार करता है। १९६४ में चीन ने हांगकांग को १५ करोड़ डालर के खाद्य पदार्थ बेचे थे। हांगकांग के बाजार चीनी सामान से पटे रहते हैं।

हांगकांग को पीने का पानी सप्लाई करके भी चीन खूब मुनाफा कमाता है। इतना ही नहीं, एशिया के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के विरुद्ध आक्रमण और तोड़फोड़ की कार्यवाही करने के लिए हांगकांग

एक बड़ा अड्डा बना हुआ है। वियतनाम के युद्ध में फंसे हुए अमरीकी सिपाही हजारों की संख्या में बीच-बीच में मौज मारने के लिए हांगकांग आते रहे हैं। हांगकांग के बन्दरगाह अमरीकी सातवें बेड़े के युद्धपोतों की मरम्मत करने में लगे रहते हैं। हांगकांग साम्राज्यवादियों तथा कुमिनतांग की जासूसी एजेन्सियों के लिए दफ्तर का काम करता है। खुद उपनिवेशवादियों की धारणाओं के अनुसार यदि अंग्रेजों को हांगकांग से निकाल दिया जाय तो पूरे दक्षिण-पूर्वी एशिया की स्थिति साम्राज्यवादियों के लिए खतरनाक हो जायेगी।

मकाओ के बारे में भी चीन का यही रुख है। यह एक पुर्तगाली उपनिवेश है जो हांगकांग की तरह द्वीपों पर नहीं बसा है बल्कि लगभग पूरी तरह चीन की मुख्य भूमि के अन्दर है। मकाओ मुनाफे का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इस मुनाफे को पुर्तगाली सरकार अंगोला, मोजाम्बिक और अन्य अफ्रीकी उपनिवेशवादियों के खिलाफ सैनिक कार्यवाहियों के लिए इस्तेमाल करती है। चीन के शासक ३०९ साल पुराने पुर्तगाली शासन को खत्म करना नहीं चाहते। घाटवाली विशेष नावें हांगकांग से प्रतिदिन मकाओ के लिए हजारों यात्री ले जाती हैं और ये यात्री मकाओ में सरकारी तौर पर चलने वाले जुआघरों में जुआ खेलते हैं, चीनी वेश्यालयों में रंगरेलियां करते हैं और हेरोइन तथा अफीम के अड्डों पर तस्कर व्यापार करते हैं। वहां के औपनिवेशिक अधिकारी काले बाजार की कीमतों पर सोने व हीरे बेचने की इजाजत देते हैं। इस तरह जो तस्कर व्यापार चलता है उसमें पेकिंग सरकार के अपने आदमी भी शामिल होते हैं।

यहां का एक बड़ा व्यापारी हो यिंग मकाओ चैम्बर आफ कामर्स का अध्यक्ष है। वह कितने ही वेश्यालय और व्यभिचार के अड्डे चलाता है। वह चीन लोकतन्त्र की सरकार से बड़ी संख्या में लड़कियां और अफीम हासिल करता है। उन दोनों के जरिये बड़ी रकम कमाता है।

यह व्यक्ति मकाओ के गवर्नर जोसना वरेडी कार्वोलो के साथ वार्ता में पेकिंग का प्रतिनिधित्व करता है।

हो यिंग अपनी अमरीकी मोटर कार में अक्सर कैंटन में और कभी-कभी पेकिंग में भी देखा जाता है। हो यिंग पर पेकिंग तथा लिसबन दोनों की अच्छी कृपा है।

मकाओ चीनियों के लिए सिर्फ सोना कमाने का साधन ही नहीं है, यहां वे साम्राज्यवादी देशों के प्रतिनिधियों से तथा थाईलैंड, मलेशिया, दक्षिण वियतनाम तथा ताईवान के बीच गुप्त मिलन भी करते रहते हैं।

द्वन्द्ववाद या माओवाद

माओ त्से-तुंग अपने आपको उच्च कोटि का सिद्धान्तकार साबित करने के लिए बहुत प्रयास करते हैं। इसके लिए उन्होंने कुछ पुस्तिकायें लिखी हैं जिनमें मुख्य ये हैं: 'व्यवहार के बारे में', 'अन्तर्विरोध के बारे में', 'जनगण के बीच अन्तर्विरोधों के सही उपयोगों के बारे में', और 'सही विचार कहां से आते हैं।'

माओ त्से-तुंग के चेले पहली दो पुस्तकों के बारे में विशेष रूप से यह दावा करते हैं:

"मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन की समस्त कृतियों के सर्वाधिक व्यापकपूर्ण क्रमबद्ध और श्रेष्ठतम परिणाम हैं।"

पाठक यह जानते हैं कि प्रकृति, पूरे समाज तथा घटनाक्रम की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए मार्क्स ने जिस द्वन्द्वात्मक प्रणाली की खोज की थी वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सबसे बड़ा दार्शनिक आधार है। इसी आधार पर हम समाज की वस्तुगत परिस्थितियों का अध्ययन कर सकते हैं, विभिन्न वर्गों के आपसी रिश्तों तथा प्रवृत्तियों का दिशा-बोध प्राप्त करके अपनी क्रान्तिकारी भूमिका का निश्चय कर

सकते हैं। द्वन्द्वात्मकवाद दो विरोधी तत्वों के विरोध और सहअस्तित्व की अनिवार्यता के सिद्धान्त पर पूरी प्रगति का विश्लेषण करने में मदद करता है। परन्तु माओ त्से-तुंग की द्वन्द्ववादी सिद्धान्त की जानकारी बहुत सतही है और वह उसका वैज्ञानिक रूप समझने में असमर्थ हैं। माओ त्से-तुंग विपरीत अवधारणाओं के किसी भी जोड़े को अन्तर्विरोध मान लेते हैं। और इस प्रकार 'अन्तर्विरोध के बारे में' शीर्षक अपनी पुस्तिका में इस प्रस्थापना का कि विपरीत पक्षों का एक-दूसरे से स्वतंत्र, पृथक अस्तित्व नहीं हो सकता, दृष्टान्त देते हुए वह लिखते हैं :

"जीवन के बिना मृत्यु नहीं और मृत्यु के बिना जीवन नहीं, शिखर के बिना तल नहीं और तल के बिना शिखर नहीं, दुःख के बिना सुख नहीं और सुख के बिना दुःख नहीं, सरलता के बिना कठिनाई नहीं और कठिनाई के बिना सरलता नहीं, जमींदार के बिना किसान नहीं और किसान के बिना जमींदार नहीं, पूंजीपति के बिना सर्वहारा नहीं और सर्वहारा के बिना पूंजीपति नहीं।"

हमारा साधारण द्वन्द्ववादी समझ वाला पाठक भी यह अनुमान लगा सकता है कि शिखर और तल, सरल और कठिन, आदि की तुलना में पूंजीपति और सर्वहारा की मिसाल कहां तक सही बैठ सकती है। वास्तव में एक निम्न-पूंजीवादी बुद्धिजीवी की भांति माओ त्से-तुंग को द्वन्द्ववाद की वैज्ञानिक जानकारी में उतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी लफ्फाजी या मुहावरेबाजी में है। तभी तो वह लिखते हैं :

"किसी अन्तर्विरोध के दो पक्ष होते हैं। पक्षों में जरूरी तौर पर एक मुख्य पक्ष होता है और दूसरा गौण पक्ष होता है। मुख्य पक्ष वह होता है जो उस अन्तर्विरोध में अग्रणी भूमिका अदा करता है।" (संकलित रचनायें, खण्ड दो)।

माओ ने किसी अन्तर्विरोध में मुख्य पक्ष की अग्रणी भूमिका के बारे में अपनी यांत्रिकतापूर्ण समझदारी का परिचय दिया है। पूंजीवादी

समाज पर पूंजीपतियों का प्रभुत्व होता है और वही अग्रणी पक्ष होता है। यह एक पुरातनपंथी दृष्टिकोण है। वास्तव में सर्वहारा वर्ग ही अग्रणी पक्ष होता है। इसलिए कि संघर्ष की गतिशीलता और विकास सर्वहारा के आन्दोलन से ही आगे बढ़ते हैं। और यही कारण है कि मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग को पूंजीवादी समाज का विध्वंसक एवं अग्रणी पक्ष और पूंजीपतियों को रूढ़िवादी पक्ष कहा है।

मुख्य और गौण पक्षों के बारे में अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए माओ घोषणा करते हैं :

"किसी अन्तर्विरोध के मुख्य और गौण पक्ष एक-दूसरे में रूपान्तरित हो जाते हैं और घटना की प्रकृति तदनुसार बदल जाती है।" (संकलित रचनायें, खण्ड दो)।

अपनी इसी बात को स्पष्ट करते हुए माओ त्से-तुंग आगे कहते हैं :

"यदि किसी अन्तर्विरोध के विकास की किसी खास प्रक्रिया या अवस्था में 'क' उसका मुख्य पक्ष और 'ख' गौण पक्ष है तो विकास की किसी दूसरी अवस्था या प्रक्रिया में इन पक्षों की स्थिति बदल जाती है। यह परिवर्तन किसी घटना के विकास की प्रक्रिया में अन्तर्विरोध के दोनों परस्पर-विरोधी पक्षों के शक्ति सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन की मात्रा पर निर्भर करता है।" (संकलित रचनायें, खण्ड दो)।

माओ आगे कहते हैं कि नये का विकास होता है, पुराने का ह्रास होता है।

माओ द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त को अपनी नासमझी के कारण कितना विकृत करते हैं यह उनके दो उद्धरणों से भलीभांति स्पष्ट हो जाता है :

"किसी घटना में अन्तर्निहित दो परस्पर विरोधी पक्षों में प्रत्येक पक्ष खास परिस्थितियों में अपने विरोधी पक्ष में रूपान्तरित हो जाता है। वह उस स्थिति में पहुंच जाता है जहां उसका विरोधी पक्ष था।" (संकलित रचनायें, खण्ड दो)।

अपनी यांत्रिक समझ के पक्ष में माओ त्से-तुंग निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

"क्रान्ति के जरिये सर्वहारा वर्ग शासित वर्ग से शासक वर्ग में बदल जाता है। वह उस स्थान को ग्रहण कर लेता है जो उसके विरोधी का था।" (संकलित रचनायें, खण्ड दो)।

ऊपर से देखने में यह सिद्धान्त और उदाहरण बहुत प्रभावशाली दीखता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या पूंजीपति वर्ग वास्तव में ठीक वही स्थान ग्रहण कर लेता है जो उसके विरोधी सर्वहारा वर्ग का था और सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग का स्थान ग्रहण कर लेता है। अन्तर्विरोध के हल किये जाने के फलस्वरूप क्या उसके दोनों विपरीत पक्ष पहले की ही तरह बने रहते हैं और क्या वे केवल स्थान परिवर्तन ही करते हैं? जैसा कि सर्वविदित है, सर्वहारा वर्ग मजदूरी पर काम करने वाला शोषित वर्ग है। तो क्या सर्वहारा क्रान्ति पूंजीपति वर्ग को शोषित वर्ग में और सर्वहारा वर्ग को शोषक वर्ग में बदल देती है। यदि यही मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त है तो यह माओ त्से-तुंग को ही मुबारक हो। इसका द्वन्द्ववाद से कोई सरोकार नहीं है।

सर्वहारा क्रान्ति सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली का रूपान्तर कर देती है। उत्पादन के साधन सामाजिक सम्पत्ति बना दिये जाते हैं। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का उन्मूलन हो जाता है। और अन्त में समाज की सभी विषमतायें समाप्त कर दी जाती हैं। परिणामस्वरूप सर्वहारा क्रान्ति पूंजीपति वर्ग को शासक वर्ग से शासित वर्ग में नहीं बदलती बल्कि वर्ग रूप में उसका उन्मूलन कर देती है। इसी प्रकार, सर्वहारा वर्ग समाजवादी समाज का मजदूर वर्ग बन जाता है। यह सही है कि क्रान्ति के इस रूपान्तरण में सर्वहारा वर्ग नेतृत्व के पद पर रहता है और इसीलिए उसे शासक वर्ग कहा जा सकता है। परन्तु वह पूंजीपति वर्ग की स्थिति ग्रहण नहीं करता। इसलिए कि संक्रमण काल

के उपरान्त वह स्वयं भी अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को पूरे कमेरा वर्ग को अर्पित करके समाजवादी व्यवस्था का कमेरा वर्ग भर रह जाता है।

ऊपर के लेखों से यह बात समझ में आ जाती है कि माओ त्से-तुंग के विचार मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचार नहीं हैं बल्कि निम्न-पूंजीवादी विचारधारायें हैं।

आगे चलकर माओ त्से-तुंग के हाथों में सत्ता केन्द्रित होने पर उसके दुरुपयोग की और चीनी जनता पर आतंक बरपा करने की जो कथायें सामने आती हैं वे इसी दार्शनिक व्यायाम और शीर्षासन का स्वाभाविक परिणाम हैं।

माओ त्से-तुंग किसी अन्तर्विरोध को शान्त करने की प्रक्रिया के लिए यह यांत्रिक सिद्धान्त लागू करते हैं कि इसके जरिये बुरे पक्ष का उन्मूलन हो जाता है और अच्छे पक्ष की रक्षा हो जाती है। इसी प्रकार की बात प्रूधों, जो काल्पनिक समाजवादी थे, कहा करते थे। मार्क्स ने उनकी इस निम्न-पूंजीवादी धारणा का खण्डन करते हुए कहा था :

"वह जो बुरे पक्ष के उन्मूलन का दायित्व अपने ऊपर लेता है, इसी कार्य द्वारा द्वन्द्वात्मक गति को समाप्त कर देता है। (मार्क्स और एंगेल्स की रचनायें, खण्ड ४, पैरा २) अर्थात् किसी अन्तर्विरोध के साथ एक नयी घटना उत्पन्न होती है, परन्तु पुरानी वस्तुस्थिति के जो रूप नयी घटना के साथ विद्यमान दिखाई देते हैं वे वास्तव में नये रूप ही हैं। किन्तु पुराने रूपों की उपादेयता के समान होने के कारण ऐसा अनुभव होता है जैसे उन्हें कायम रख लिया गया है। माओ त्से-तुंग द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के वैज्ञानिक ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण इस प्रकार की बातें करते हैं जिसका मार्क्सवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जो लोग माओ त्से-तुंग की इन निम्न-पूंजीवादी महत्वाकांक्षाओं और दुस्साहसवाद को मार्क्सवाद समझते हैं वे यह बात समझने में असमर्थ रहते हैं कि माओ त्से-तुंग ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को तहस-नहस

क्यों किया, चीनी अर्थ-व्यवस्था को विघटन के कगार पर क्यों पहुंचाया, पूरे कम्युनिस्ट आन्दोलन में तोड़-फोड़ क्यों की, बहुत से देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां नष्ट क्यों कर डालीं, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के साथ विश्वासघात क्यों किया और अन्त में "कागज के चीते" के सामने घुटने क्यों टेक दिये ?

आइये ! इन सब कारणों की विवेचना करें।

माओवाद क्या है ?

ऊपर लिखे तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मार्क्सवादी दर्शन का चीनी नेताओं से कोई सरोकार नहीं है। और विशेष रूप से चीन के अन्दर और बाहरी दुनिया में जो आचरण वे कर रहे हैं उसका कम्युनिस्ट आन्दोलन से कोई सरोकार नहीं है। विपरीत इसके, हमारा यह विश्वास है कि चीन के अन्दर एक ऐसे गिरोह के हाथों में सत्ता आ गई है जो सामाजिक विकास का पहिया उल्टा घुमाना चाहते हैं और संसार के प्रत्येक प्रगतिशील आन्दोलन के घोर शत्रु हैं। दरअसल निम्न-पूंजीवादियों और त्रात्सकीवादियों के हाथों में दुनिया के सबसे बड़े देश की राजनीतिक सत्ता आ गई है और वहां बैठकर वे पूरे संसार के प्रगतिशील आन्दोलन के खिलाफ एक षड़यन्त्र कर रहे हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त माओवादियों के लिए सर्वथा विजातीय हैं। वह एक ऐसा गिरोह है जो मंचू सम्राटों की महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित है। वह पूरे संसार को मंचू सम्राटों की तरह चीन के इर्द-गिर्द घुमाना चाहता है। वह चीन को पूरे संसार की धुरी समझता है और पिछले चार हजार वर्षों में जितने भी भूभाग किसी भी समय और परिस्थिति में चीनी सम्राटों के कब्जे में रहे उन्हें फिर से अपने कब्जे में लेकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने के सपने देखता है।

यदि चीनी नेताओं का वह सिद्धान्त सही है तो आधे से ज्यादा

चीन पर मंगोलिया का शासन होना चाहिए।

संसार में दूसरा समाजवादी देश होने का गौरव मंगोलिया को प्राप्त है। मंगोलिया सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाओं को लांघ कर सीधा समाजवाद में प्रविष्ट हुआ है। इस दृष्टि से देखा जाय तो मंगोलिया पहला समाजवादी देश है जो सीधा आदिम कवाइली व्यवस्था से निकल कर समाजवाद में उतरा है और उसके अनुभव पूरे संसार में प्रथम स्थान रखते हैं। समाजवादी मंगोलिया के सर्वमान्य नेता स्वर्गीय कामरेड सुखे बातुर कामरेड लेनिन के साथियों में रहे हैं और अभी मंगोलिया ने उनकी जयन्ती मनाई है।

भौगोलिक दृष्टि से मंगोलिया दुनिया के सबसे बड़े देशों में है। इतिहास में उसने बड़े-बड़े विजेता पैदा किये हैं। कुवलय खां, चंगेज खां, आदि ऐसे ही विजेता थे। आधे से अधिक चीन पर सदियों तक मंगोलों ने राज्य किया है। परन्तु आज आधी से अधिक मंगोल जनसंख्या पर चीनी राज्य करते हैं और बड़ा भौगोलिक क्षेत्र चीनियों के कब्जे में है। यदि चीनी नेताओं का यह सिद्धान्त सही मान लिया जाता कि जो देश और इलाके कभी चीनियों के अधिकार में थे, उन पर चीनियों का ही अधिकार रहना चाहिए तो आधे से ज्यादा चीन मंगोलों के शासन में दिया जाना चाहिए। परन्तु व्यवहार में इसका उल्टा हो रहा है। चीनियों ने भीतरी मंगोलिया पर अपना अधिकार जमा रखा है और बाकी मंगोलिया को भी चैन से नहीं बैठने देते हैं।

परन्तु चीनी नेताओं का मार्क्सवाद-लेनिनवाद की माला जपना अकारण नहीं हैं। वे जानते हैं कि आज दुनिया में कोई ऐसी विचारधारा नहीं है जो करोड़ों-अरबों लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती हो। इसके अलावा खुद चीनी जनता भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित रही है। और इसीलिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर सीधा हमला करने के बजाय यह षड्यन्त्रकारी गिरोह मार्क्सवाद के नाम पर जिस सैद्धान्तिक कूड़े-

कचरे का प्रचार करता है उसी का नाम उन्होंने माओ त्से-तुंग के विचार रख दिया है।

पूरे संसार के बुद्धिजीवियों के कान उसी वक्त खड़े हो गये थे जब माओ त्से-तुंग के चेलों ने "चीनीकृत" मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की रचना की थी और आगे चलकर उसे एशियाई मार्क्सवाद का नाम दिया था।

आज चीन में जो कुछ हो रहा है उसके विविध रूप तथा चेष्टायें बहुत जटिल हैं। और अपनी आर्थिक, दार्शनिक और सामाजिक हरकतों को उन्होंने इतने जटिलतापूर्ण आवरणों में ढक दिया है कि बहुत कठिनाई से साधारण लोग उनके खतरनाक रूप समझ पाते हैं। संक्षेप में माओवादियों ने निम्नलिखित प्रवृत्तियों को एक सूत्र में पिरोया है :

सामन्ती चीन का दर्शनशास्त्र (प्रायः कन्फ्यूशियसवाद तथा माओवाद) जिसके मुख्य अंग हैं जटिलता, रहस्यवाद, आदिमकालीन द्वन्द्ववाद, आत्मसमर्पण के उद्देश्य, राज्य सत्ता का यशोगान, आत्मगत भावनायें और रूढ़िवाद के सामने आत्मसमर्पण।

निम्न-पूंजीवादी समाजवाद इसके अनुसार प्रौधों का काल्पनिक समाजवाद है। हेगेल का शीर्षासन करता हुआ द्वन्द्ववाद, विरोधी पक्षों में बुरे का विरोध और अच्छे का समर्थन तथा वस्तुगत परिस्थितियों को धक्का देकर मनोगत भावनाओं को सर्वोपरि स्थान देना।

कृषक क्रान्तिकारिता जो निम्न-पूंजीवादी विचारधारा से उत्पन्न होती है दुस्साहसिक और उग्रवामपक्षी शब्दावली से भरी रहती है, अग्रगामी दस्ते की विचारधारा जिसका यह स्वाभाविक नतीजा होता है कि क्रान्तियां बिना क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के कुछ नेताओं के द्वारा की जाती हैं।

परम्परावादी राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित ऐसा अहंकार जो चीन को पूरे संसार की धुरी मानता है, केवल बदकिस्मती के कारण चीन के लिए अन्धकार युग का आगमन और माओ त्से-तुंग के रूप में नये

सूर्य के उदय से महा शक्तिशाली चीन के अभ्युत्थान की कल्पना करना।

त्रात्स्कीवाद जो तीसरे और चौथे दशक में चीन के क्रान्तिकारी आन्दोलन में व्यापक स्थान बनाये रहा, आज राजसत्ता हाथ में आने के बाद अपने विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है।

अराजकतावाद जिसने तीसरे दशक में चीनी क्रान्ति में प्रभावशाली स्थान बना रखा था और जिसे माओ त्से-तुंग ने आदर्श के रूप में स्वीकार किया था, आज राजसत्ता के साथ एकाकार होकर चीनी जनता और मुक्ति आन्दोलनों में कहर ढा रहा है।

यह एक कटु सत्य है कि माओ ने कभी पूर्णरूपेण मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन नहीं किया। न उन्होंने कभी मार्क्सवादी दृष्टिकोण ही ग्रहण किया है। सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों की उपेक्षा करना और सामाजिक प्रक्रियाओं में शेखचिल्लीपने की भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना त्रातसकीवाद की खास विशेषता है। राजनीति में दुस्साहसवाद, अर्थशास्त्र में स्वैच्छिकतावाद और सामाजिक क्रान्ति में अग्रगामिता के सिद्धान्त लागू करना माओवाद में त्रात्स्कीवाद का ही योगदान है।

माओवादी जब युद्ध की अनिवार्यता घोषित करते हैं तो इसके पीछे उनकी त्रातसकीवादी अन्तर्राष्ट्रीय समझ काम करती है। वे यह अनुभव करते हैं कि पहले युद्ध ने रूस में समाजवाद की स्थापना की, दूसरे महायुद्ध ने चौदह देशों में समाजवाद की विजयपताका फहरायी और यदि तीसरा महायुद्ध छिड़ जाता है तो पूरे संसार में समाजवाद की विजय होना सरल हो जायेगा। इस प्रकार वे क्रान्ति का निर्यात करने की त्रातसकीवादी समझ के आधार पर साम्राज्यवाद के अन्तर्विरोधों को उस भौंडेपन के साथ अनुभव करते हैं जिसका मार्क्सवाद से कोई सरोकार नहीं है। माओ के चेले यह महसूस करते हैं कि तीसरा महायुद्ध शुरू हो जाने पर और अमरीका द्वारा परमाणु बमों

तथा हाइड्रोजन बमों का इस्तेमाल करने पर पूरी दुनिया के लोग साम्राज्यवाद के विरोध में उठ खड़े होंगे और उसे परास्त कर देंगे। परन्तु साम्राज्यवाद के पराजित होने से पहले वह पूरी मानवजाति के लिए कैसी भयानक विनाश लीला ला देगा इसकी कल्पना करने को तैयार नहीं। वास्तव में माओ की यह धारणा, "बिना दुःख के सुख नहीं", और यह कि "जितना ही खराब उतना ही अच्छा," वाली दार्शनिक पहेली का यह नतीजा है कि माओ के चेले ये मुहावरे इस्तेमाल करते हैं।

अमरीका ने वियतनाम पर आक्रमण कर दिया है। यह अच्छा है क्योंकि इससे अमरीका अपने विनाश के और निकट आ गया है और उसने अपना भांडा-फोड़ कर दिया है। इजराइल ने अरब राष्ट्रों पर हमला किया। यह अच्छा है क्योंकि इससे इजराइल ने आक्रामक के रूप में अपना पर्दाफाश कर दिया है, जबकि अरबों ने भी अपने लिए इससे कुछ सबक सीखा है।

यदि पूंजीपति परमाणु बमों और उद्जन बमों के साथ तीसरा युद्ध छेड़ते हैं तो यह अच्छा ही होगा। इसलिए कि युद्ध के फलस्वरूप पृथ्वी पर एकमात्र व्यवस्था जो बच रहेगी, वह समाजवाद ही होगी।

यह खतरनाक द्वन्द्ववाद मार्क्सवाद नहीं है बल्कि त्रात्सकीवाद की खतरनाक चिन्तन प्रणाली है। अमरीका और सोवियत संघ को एक श्रेणी में रखकर इसलिए कि दोनों के अग्निबाण चन्द्रलोक तक पहुंच रहे हैं, दोनों की अर्थ-व्यवस्थायें साधन सम्पन्न हैं और दोनों की राजधानियां संसार की दो मुख्य प्रतिद्वंद्वी धुरियां बन गई हैं और दुनिया के तमाम 'भूखे-नंगे' तथा अल्पविकसित देशों को इन दोनों के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करना नया त्रात्सकीवाद है, और माओ के चेले इस कार्य को निर्लज्ज तरीकों से पूरा कर रहे हैं। यह सोवियत समाजवादी व्यवस्था के खिलाफ युद्ध छेड़ने का नारा है। और इस कार्य में

वे साम्राज्यवादी ताकतों के साथ खुला गठबन्धन कर रहे हैं।

इस सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में चीनी नेताओं की घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चों पर बढ़ती जा रही काली-करतूतों और उसके परिणामों से अवगत होना बहुत जरूरी है।

यह उल्लेखनीय है कि १९१८ के अन्त में माओ पीकिंग में अराजकतावाद के सक्रिय समर्थकों की टोली में सम्मिलित थे। उन्होंने अन्य नगरों के अराजकतावादियों से पत्राचार करके 'वुहान' तथा अन्य प्रांतों में अराजकतावादी टोलियां संगठित करने का आह्वान किया।

हसियान चियांग पिंगलुन नामक पत्र में १९१९ में माओ ने "जनता की व्यापक एकता" शीर्षक पत्र लिखा, जिसमें मार्क्सवादियों के विचारों को अधिक व्यापक और "अधिक गहन" मानते हुए अराजकतावाद को मार्क्सवाद के मुकाबले में बेहतर बताया था।

१९२० में श्री माओ कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए। १९२८ में पार्टी की कांग्रेस ने माओ त्से-तुंग के बारे में निम्नलिखित धारणा प्रस्तुत की :

"माओ त्से-तुंग ने ऐसी नीति का पालन किया जो मुख्य रूप से लम्पट सर्वहारा और निम्न पूंजीवादियों की, जो पस्त हिम्मत हो चुके हैं और जिन्हें भविष्य में अपने लिए कोई रास्ता नहीं दिखाई देता, चरित्रगत विशिष्टता हैं।"

आगे चलकर मार्क्स लिखित पूंजी का अध्ययन करने वालों को माओ त्से-तुंग "व्यर्थ में सिर खपाने" वाले "कठमुल्लावादी" कहा करते थे।

उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने "थोड़ा मार्क्सवाद पुस्तकों से पढ़ा है और वैचारिक स्वयं पुनः शिक्षण की दिशा में पहले डग भरे, लेकिन मुख्य रूप से यह पुनः शिक्षण लम्बे समय तक चलने वाले वर्ग संघर्ष के दौरान हुआ।" (जनता के बीच अन्तर्विरोधों के सही उपयोग के

बारे में)।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की तीसरी कांग्रेस में उन्होंने ऐसी लाइन अख्तियार की थी जो मजदूर वर्ग की क्षमताओं के दक्षिणपंथी निराशा-वादी मूल्यांकन को एक ऐसे वामपक्षी दुस्साहसिकतावादी विचार से जोड़ती थी जिसके अनुसार चीनी क्रान्ति सीधे-सीधे बाहर से चीन पर सैनिक आक्रमण के जरिये सफल होने की बात कही गई थी। १९२७ में माओ त्से-तुंग "स्थाई क्रान्ति" की लाइन के पैरोकार बन गये और उसी समय उन्होंने यह दावा भी किया कि चीन में समाजवादी क्रान्ति सन्निकट आ गयी है। (हमारे सामने १९०५ नहीं बल्कि १९१७ खड़ा है)।

अप्रैल १९२९ में माओ ने कियान्सी प्रान्त पर कब्जा करने की दुस्साहसिकता पूर्ण योजना बनाई। १९३० में माओ ने ली ली-सान की दुस्साहसिक लाइन का समर्थन किया जिसका लक्ष्य सोवियत संघ को विश्वयुद्ध में फंसाना था।

यह सब बातें इसलिए याद दिलायी जा रही हैं जिससे पाठक यह समझ सकें कि जिस व्यक्ति के हाथ में आज चीन का शासनतन्त्र है उसका दिमागी चिन्तन और उसकी विचारधारा भूतकाल में क्या थी और तभी हम उसके वर्तमान काल के विघटनकारी कामों की विवेचना कर सकते हैं।

पूँजीवादियों के साथ सहअस्तित्व

चीनी नेता समाजवादी शिविर, तटस्थतावादी राष्ट्र समुदाय तथा नये स्वाधीन देशों के साथ शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति में विश्वास नहीं करते। ये लोग खुद चीन के अन्दर प्रगतिशील बुद्धिजीवियों, किसानों, मजदूरों, और सच्चे लेनिनवादियों के प्रति भी सहअस्तित्व की नीति का पालन नहीं करते। परन्तु बाहरी दुनिया में साम्राज्य-

वादियों के प्रति तथा घरेलू नीति में पूंजीवादियों के प्रति शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति में पूरा यकीन करते हैं।

पेकिंग, शंघाई और बड़े-बड़े नगरों में चुस्त कोट व पेन्ट पहने तगड़े लोग अक्सर मिल जाते हैं। ये लोग चीन के पूंजीपति थे। ये मेहमानों के साथ घूमने जाते हैं और उनके साथ घुल-मिलकर बातें करते हैं।

चीनी सरकार ने पूंजीवादी व्यापार को एकदम अपने हाथ में लेने के बजाय उद्योग तथा व्यापार का धीरे-धीरे रूपान्तर करने की और उसे समाजवादी आधार पर बदलने की नीति अपनाई। पूंजीपति वर्ग के साथ यह सहयोग की नीति है। १९५६ के प्रारम्भ में चीनी पूंजी-पतियों ने अपने धन्धों को समाजवादी धन्धों के रूप में बदल देने की सरकारी नीति का स्वागत किया था। उनकी सम्पत्ति का मूल्यांकन विशेष आयोग ने किया था जिसके सभी सदस्य खुद पूंजीपति थे। इस आयोग की सिफारिशों के बाद कारखानों और दुकानों के भूतपूर्व मालिकों ने अपनी पूंजी पर ५ प्रतिशत वार्षिक व्याज पाना प्रारम्भ कर दिया।

पूंजीपति वर्ग को तमाम नागरिक और राजनीतिक अधिकार दे दिये गये। पूंजीपतियों के प्रतिनिधि केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारी निकायों में रखे जाने लगे। सम्पत्ति पर ५ प्रतिशत के व्याज के भुगतान को १९६२ तक बन्द न करने की घोषणा की गई और इसके बाद उस अधिकार को अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दिया गया। यह बात भी नहीं है कि पूंजीपतियों ने चीनी क्रान्ति के प्रति कोई विशेष सहयोग के भाव रखे थे और इसीलिए उन्हें ये रियायतें दी गई हैं।

१९६६ में जो सांस्कृतिक क्रान्ति हुई और जिसमें क्रान्ति के बड़े-बड़े नेता अपमानित किये गये थे, इन पूंजीपतियों के खिलाफ लाल प्रहरियों ने कोई कदम नहीं उठाया था। १९६६ में कुछ लाल प्रहरियों

ने ५ प्रतिशत ब्याज देना बन्द करने की मांग जरूर उठाई थी। परन्तु १२ घन्टे के अन्दर ही किसी अज्ञात शक्ति ने उनका मुंह बन्द कर दिया और नारे रुक गये। आज अकेले शंघाई में करीब ६० हजार भूतपूर्व पूंजीपति रहते हैं, और उन्हें अच्छी-खासी रकम ब्याज के रूप में मिलती रहती है। उनके बच्चे भोग-विलास का जीवन बसर करते हैं। शंघाई के पूंजीपति जुंग यी-जेंग चीन में सबसे धनी व्यक्ति हैं। पिछले ११ साल से इस परिवार को उसकी ६ सूती कपड़ा मिलों के लिए ढाई लाख युवान वार्षिक दिया जाता है। और बैंकों में उसकी रकम करीब ५ करोड़ युवान है। आज भी उसका घर नौकरों से भरा रहता है। शंघाई के दूसरे पूंजीपति वेत्सुन-यी को ८० हजार युवान सालाना मिलता है। जबकि चीनी मजदूरों का औसत सालाना वेतन केवल ८०० युवान है। ये दोनों पूंजीपति चीन जन-प्रतिनिधि सभा (चीनी संसद) के सदस्य हैं।

तियेंतसिन में एक सूती कपड़ा मिल है जहां मुख्य रूप से निर्यात के लिए कपड़ा बनाया जाता है। इस मिल में १० हजार तकलियां, १६७ करधे और २७०० मजदूर काम करते हैं। मुक्ति से पहले इस मिल का मालिक कुख्यात क्रान्ति-विरोधी था। क्रान्ति की सफलता के बाद १६४६ में वह ताईवान भाग गया था और वहां भी वह अब तक चीन के खिलाफ हरकत करता रहता है। परन्तु उसके आदेश पर उसके भतीजे को चीनी सरकार ५ प्रतिशत ब्याज देती रहती है। यद्यपि इटली और जापान के सहयोग से इस मिल का आधुनिकीकरण कर दिया गया है और बाद के विशाल पूंजी विनियोग में पुरानी पूंजी का विशेष महत्व नहीं रह गया है, परन्तु भतीजे को ५ प्रतिशत फिर भी दिया जा रहा है।

यहां तक कि सांस्कृतिक क्रान्ति के अराजकतापूर्ण दिनों में भी, जब सारे चीन में भूचाल-सा आया हुआ था और किसी का भी सम्मान

व मर्यादा सुरक्षित नहीं थी, पूजीवादियों के सम्मान, मर्यादा और अधिकारों के खिलाफ किसी ने चूं तक नहीं की।

क्रान्ति की सफलता के बाद पूंजीपतियों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया गया है। यहां तक कि उनके राजनीतिक अधिकार भी सुरक्षित हैं। उनकी सख्त आलोचना तक नहीं हो सकती और यहां तक कि पुराने नौकरशाहों एवं नौकरशाही पूंजीपतियों को भी जनता की आलोचना से बचाया जाता है।

१९६४ की एक विशेष घटना बहुत सनसनीखेज है। ली त्सुंग-जेंग मार्शल च्यांग काई शेक का घनिष्टतम सहयोगी और मित्र तथा कुमिनतांग का अध्यक्ष था। १९२७ में उसने हजारों साम्यवादियों का कत्लेआम किया था। वह चीनी क्रान्ति के हजारों कार्यकर्ताओं की हत्या के लिये भी ज़िम्मेदार था और कम्युनिस्टों के नरसंहार की योजनायें कार्यान्वित करने के लिए कुमिनतांग के बड़े-बड़े पदों पर प्रतिष्ठित किया गया था। १९४८ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्रान्ति-विरोधियों, हत्यारों और अपराधियों की जो सूची प्रकाशित की थी, उसमें ली का नाम दूसरा था। पहला च्यांग काई शेक का था।

वह १५ वर्षों तक अमरीका में रह कर उन्हें यह उपाय बताता रहा कि चीनी क्रान्ति का मुकाबिला किस ढंग से करना चाहिए। १९६४ में वह अचानक पेकिंग आया, श्री चाऊ एन लाई से मिला और माओ त्से-तुंग ने उसका जी भर कर स्वागत किया। इसके बाद ली जोरदार ढंग से राजनीतिक आन्दोलन में कूद पड़ा। उसने समाजवादी शिविर से चीन के अलग होने की और अमरीका तथा दूसरे पश्चिमी देशों के साथ सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता पर काम करना शुरू कर दिया। माओ त्से-तुंग उसका खूब सम्मान करते हैं और १९६६ में पहली अक्तूबर की परेड में ली को माओ त्से-तुंग और लिन प्याओ के बाद तीसरे स्थान पर खड़ा किया गया था। प्रदर्शन के बारे में रिपोर्ट

देते समय अखबारों में ली का उल्लेख केन्द्रीय समिति के बहुत से सदस्यों से भी पहले किया गया था।

इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पूंजीवाद और प्रतिक्रियावाद के खिलाफ कागजी संघर्ष का ढोल पीटने वाले चीनी नेता पूंजीवादियों के साथ कितना घनिष्ठ सहयोग करते हैं।

सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का राग अलापने वालों ने पूंजीवादियों को संरक्षण दे रखा है और चीनी मजदूर वर्ग तथा प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के अधिकारों का दमन किया जा रहा है। हांग-कांग, मकाओ, मात्सू, छिगमिन और ताईवान आदि द्वीपों में भी साम्राज्यवादी मौज मारते हैं तथा चीनी नेता उनके साथ सहयोग करते हैं।

त्रात्स्कीवाद की कथनी और करनी का भेद एवं क्रान्ति के साथ दुःखद विश्वासघात अधिकाधिक जनता के सामने प्रकट होता जा रहा है। विश्वासघाती चीनी नेता यह जानते हैं कि किसी दिन चीनी जनता उन्हें उसी रास्ते पर ठिकाने लगा देगी जिस पर च्यांग काई शेक को लगाया था। इसीलिए, वे राष्ट्रीय उन्माद पैदा कर रहे हैं और तमाम बड़े पड़ोसियों से झगड़े मोल ले रहे हैं। ऐसा करके वे चीनी जनता को भयभीत रखना और उसे क्रान्ति एवं राष्ट्र की रक्षा के नाम पर दबा कर रखना चाहते हैं। परन्तु बाहरी देशों की तरह चीनी जनता भी उनकी असलियत समझती जा रही है। वह दिन दूर नहीं, जिस दिन जोर का धमाका होगा और ये बहुरुपिये एक ओर उठा कर रख दिये जाएंगे !

० ० ०

परिशिष्ट

श्री याहिया खां के नाम श्री चाऊ एन लाई का सन्देश

(१२ अप्रैल, १९७०)

"हमारी राय में पाकिस्तान का एकीकरण तथा पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान की जनता की एकता पाकिस्तान के लिए समृद्धि और शक्ति प्राप्त करने की बुनियादी गारन्टी है।

"पाकिस्तान के एकीकरण के रास्ते में रोड़ा अटकाने वाले मुट्ठी-भर व्यक्तियों को व्यापक जन-समूह से अलग करना अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण है।

"इसके साथ ही हमने यह भी देखा है कि इधर कुछ दिनों से भारत सरकार आपके देश की आंतरिक समस्याओं से फायदा उठाकर पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की कोशिश कर रही है।

"चीन सरकार का यह मत है कि पाकिस्तान में इस समय जो कुछ हो रहा है वह विशुद्ध रूप से उसका आंतरिक मामला है जिसे वहां की जनता ही सुलझा सकती है और दूसरे किसी भी प्रकार का विदेशी हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित है।

"आप यह विश्वास कर सकते हैं कि अगर भारतीय विस्तारवादी पाकिस्तान के विरुद्ध आक्रमण करते हैं तो सदा की भांति चीन सरकार और चीनी जनता पाकिस्तान सरकार और पाकिस्तानी जनता की

प्रभुसत्ता और राष्ट्रीय स्वाधीनता की रक्षा के न्यायोचित संघर्ष में उनका दृढ़तापूर्वक समर्थन करेगी।" (पी० टी० आई०)

"भारतीय विस्तारवादियों की योजना

(११ अप्रैल, १९७१, को **पीपुल्स डेली** के रविवासरीय संस्करण में प्रकाशित समीक्षा)

"किसी पड़ोसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप का बहाना खोजने के लिए भारतीय प्रतिक्रियावादी यह भौंडे दावे कर रहे हैं कि पाकिस्तान की आंतरिक स्थिति में परिवर्तन भारत की अपनी सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न यह है कि भारतीय सुरक्षा को पाकिस्तान से खतरा है या स्वयं भारतीय विस्तारवादी पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं?

"भारतीय प्रतिक्रियावादियों ने पाकिस्तान की स्थिति के सम्बन्ध में जब बढ़ा-चढ़ा कर दावे पेश करने शुरू किये थे तो भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान की सीमाओं पर भारी संख्या में सेनायें एकत्र कर रखी थीं और पाकिस्तानी क्षेत्र में तोड़-फोड़ के लिए उसकी सादा वर्दी वाली सेनाओं ने घुसपैठ भी शुरू कर दी थी।

"इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के लिए दो महान राष्ट्र भारतीय प्रतिक्रियावादियों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम कर रहे हैं।

"साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध करने की पाकिस्तानी जनता की एक क्रान्तिकारी परम्परा रही है और उसने विदेशी आक्रान्ताओं तथा हस्तक्षेपवादियों के विरुद्ध कभी न झुकने वाला संघर्ष किया है। चीनी सरकार और चीनी जनता राष्ट्रीय आजादी और राजकीय प्रभुसत्ता के लिए तथा विदेशी आक्रमण और हस्तक्षेप के विरुद्ध पाकिस्तान सरकार और उसकी जनता के न्यायोचित संघर्ष का

सदा दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है।"

न्यायोचित कार्यों का प्रचुर समर्थन और अन्याय का विरोध

(७ दिसम्बर, १९७१ को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के पूर्णाधिवेशन में भारत-पाक युद्धबन्दी और सेनाओं की वापिसी के सम्बन्ध में अल्जीरिया, अर्जेन्तीना तथा अन्य देशों द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव)

"...किसी भी देश की सीमाओं पर जबरन कब्जा कभी बर्दाश्त नहीं किया जायेगा और इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पाकिस्तान की एकता और क्षेत्रीय अखण्डता की रक्षा करना है।

"भारतीय प्रतिक्रियावादी बहुत आगे बढ़ चुके हैं। भारतीय विस्तारवादियों को हम यह बता देना चाहते हैं कि वे अपनी हरकतों से बाज आयें और संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव का ईमानदारी से पालन करें। अगर आप यह सोचते हैं कि आप अन्तर्राष्ट्रीय उपेक्षा की परवाह किये बिना केवल इसलिए अपनी मनमर्जी चला सकते हैं कि सोवियत संशोधनवादी और सामाजिक साम्राज्यवादी आपकी पीठ थपथपा रहे हैं, और अगर आप सैनिक दुस्साहस के मार्ग पर आगे बढ़ते रहते हैं तो आपको बुरी तरह मुंह की खानी होगी।"

६ दिसम्बर, १९७१ को 'पीपुल्स डेली' में प्रकाशित समीक्षा

"...भारत सरकार ने गत मार्च के आरम्भ में पाकिस्तान के विघटनवादियों का हर प्रकार से समर्थन किया और "बंगलादेश में स्थायी सरकार की स्थापना की"। दरअसल यह सरकार भारतीय क्षेत्र में स्थापित की गई है। भारत सरकार ने सशस्त्र आक्रमण और तोड़-फोड़ के लिए पूर्वी पाकिस्तान में तथाकथित "स्वाधीनता सेनानी" भी भेजे हैं। अब वह खुले आक्रमण के जरिये वहां तथाकथित बंगला-देश की कठपुतली सरकार भी कायम करने की कोशिश कर रही है

ताकि वह पूर्वी पाकिस्तान को हड़पने के अपने पुराने इरादे में कामयाब हो सके।

"उन्होंने यह भी कहा है कि भारत सरकार पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों की वापिसी के बाद ही वहां से अपनी सेनायें हटाने की बात सोचेगी। दूसरे शब्दों में यह कि भारत सरकार पाकिस्तान में राजनीतिक तोड़फोड़ के अपने इरादों में असफल हो जाती है तो उसे पाकिस्तान के विरुद्ध सैनिक हमला करने और जबरन पाकिस्तानी इलाके पर कब्जा करने का भी अधिकार प्राप्त है। सभी यह जानते हैं कि शरणार्थियों की तथाकथित समस्या भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का एक मनगढ़न्त तरीका है। भारत सरकार शरणार्थी समस्या को ले कर जबरन ही पाकिस्तान पर हमला किये हुए है।

"...भारत सरकार ने आज (६दिसम्बर, १९७१) "बंगलादेश" की मान्यता घोषित करदी है। बंगलादेश की उत्पत्ति पाकिस्तान पर सब तरह से हमला करके की गई है। इससे भारत सरकार के विस्तारवादी मन्सूबे और पूर्वी पाकिस्तान को हड़पने की उसकी घृणित साजिशें उजागर हो गई हैं।

"...भारत सरकार पूर्वी पाकिस्तान को हड़पने के अपने विस्तारवादी मन्सूबे को पूरा करने के लिए तथाकथित "बंगलादेश" की स्थापना का जाल बुन रही थी।

"...सोवियत संशोधनवादियों और सामाजिक साम्राज्यवादियों के संरक्षण में भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान पर हमला किया और पूर्वी पाकिस्तान पर एक बड़ा सैनिक आक्रमण करके वहां तथाकथित बंगलादेश की कठपुतली सरकार कायम करने की कोशिश की, ताकि पूर्वी पाकिस्तान को हड़पने का भारतीय प्रतिक्रियावादियों का चिरपोषित जघन्य स्वप्न साकार हो सके।"

८ दिसम्बर १९७१ को पीपुल्स डेली में प्रकाशित लेख

"...आखिर यह तथाकथित "बंगलादेश" है क्या चीज ? प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि यह भारतीय प्रतिक्रियावादियों के हाथों का एक खिलौना है। भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान के अनेक विघटन-वादियों को एकत्र किया--किसी को राष्ट्रपति, किसी को प्रधानमंत्री और किसी को अन्य मंत्री पदों से विभूषित किया। और फिर "बगलादेश" की अस्थायी सरकार की तख्ती लगा दी। ये मुट्ठी भर पाकिस्तान के नागरिक कलकत्ता और नई दिल्ली में अपनी गद्दी जमाये बैठे हैं ... भारत सरकार चाहे कितना ही नाटक खेलने की कोशिश क्यों न करे लेकिन उससे "बंगलादेश" की तथाकथित अस्थायी सरकार का मुखौटा नहीं बदल सकता।

"...तथाकथित बंगलादेश में भारत सरकार का यह जघन्य कृत्य अपने पड़ोसियों के विरुद्ध आक्रमण और विस्तार की उसकी पुरानी चाल का नतीजा है। भारत सरकार अपने पड़ोसी देशों में फूट के बीज बोने, उनकी सेनाओं पर कुत्ते की भांति भौंकने और उन देशों में तोड़-फोड़ तथा विघटन करने की बराबर कोशिश करती रहती है।

"...भारतीय प्रतिक्रियावादियों के साथ सोवियत संशोधनवदियों तथा सामाजिक साम्राज्यवादियों की गुप्त सांठगांठ से एशिया तथा सम्पूर्ण विश्व की जनता क्रोधित हो उठी है।

"किन्तु, भारतीय विस्तारवादी कितनी ही मनमानी क्यों न करें और सोवियत संशोधनवादियों तथा सामाजिक साम्राज्यवादियों से उन्हें कितना ही समर्थन क्यों न प्राप्त हो, बंगलादेश का कोई अच्छा परिणाम निश्चित रूप से सामने आने वाला नहीं है। यह पूर्व घोषणा की जा सकती है कि पूर्वी पाकिस्तान की जनता भारतीय विस्तारवादियों द्वारा उस पर थोपी गई "बंगलादेश" की कठपुतली सरकार के आगे कभी घुटने नहीं टेकेगी।"

चीन में सूडान के प्रतिनिधिमण्डल के स्वागत-समारोह में १७ दिसम्बर, १९७१ को चीन के प्रधानमन्त्री श्री चाऊ एन लाई के भाषण का एक अंश

"...हमें इस बात का पूरा यकीन है कि चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न आयें और कितने ही खतरे क्यों न उठाने पड़ें, किन्तु, पाकिस्तान की जनता की एकता जब तक कायम रहती है और वह अपने संघर्ष में अटल रहती है तब तक बहादुरी से हमले का मुकाबला करने वाली पाकिस्तान की महान जनता की अन्तिम विजय निश्चित है।"

श्री भुट्टो के पाकिस्तान के राष्ट्रपति बनने के अवसर पर श्री चाऊ एन लाई के बधाई सन्देश के कुछ अंश।

(सिनहुवा संवाद समिति, २२ दिसम्बर १९७१)

"...पाकिस्तान की जनता ने अपनी राजकीय प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखण्डता की प्रतिरक्षा के लिए भारतीय हमलावरों के खिलाफ वीरतापूर्ण संघर्ष किया है।

"...हमें इस बात का पूरा यकीन है कि जब तक पाकिस्तान की जनता की एकता कायम है और वह अपने संघर्ष में अटल है तब तक वह निश्चित रूप से स्थायी कठिनाइयों को दूर कर हमले के विरुद्ध अपने वीरतापूर्ण संघर्ष में निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी।

पूर्वी पाकिस्तान की कठिनाइयों से भारतीय प्रतिक्रियावादी चिन्तित

(रेडियो पेकिंग, २ जनवरी, १९७२)

"...भारतीय प्रतिक्रियावादियों के लिए चिन्ता का एक कारण यह भी है कि पूर्वी पाकिस्तान के अधिकांश शरणार्थियों ने अपने घरों को वापिस जाने से इन्कार कर दिया है।

"…सोवियत संघ की चिन्ता का विषय यह है कि वह पूर्वी पाकिस्तान में सस्ती मजदूरी से फायदा उठा कर पटसन का आयात करना चाहता है।"

पूर्वी पाकिस्तान में भारतीय हमले को कानूनी स्वीकृति प्रदान नहीं की जा सकती।

(पीपुल्स डेली का अग्रलेख, ३१ जनवरी, १९७२)

"…दुनिया यह देख सकती है कि भारत सरकार ने यह कार्यवाही सोवियत संशोधनवाद के समर्थन से नग्न आक्रमण के जरिये की है। अपनी इस कार्यवाही पर उसने राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के तथाकथित समर्थन की तख्ती लगा दी है। सोवियत संशोधनवाद इस प्रकार समस्याओं को उलझा नहीं सकता।

"…अमरीकी-इजराइली हमलावरों ने फिलिस्तीन के लाखों लोगों को बेघरबार कर दिया है। इन लोगों को अपने राष्ट्रीय अधिकारों की पुर्नस्थापना और अपने घरों को वापस लौटने के लिए हथियार उठाने का पूरा अधिकार है।"

राष्ट्रपति श्री भुट्टो के स्वागत समारोह में प्रधानमन्त्री श्री चाऊ एन लाई के भाषण के कुछ अंश।

(सिनहुवा संवाद समिति, २ फरवरी, १९७२)

"…एक महीने से अधिक पूर्व हमने यह कहा था कि ढाका की पराजय भारतीय हमलावरों की विजय के मार्ग में एक 'युग प्रवर्तक घटना' निश्चित रूप से नहीं है, बल्कि उनकी पराजय का आरम्भ है।

"…हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि भारत सरकार ने अपने कारनामों से यह सिद्ध कर दिया है कि उसने जो पहाड़ उठाया

है वह निश्चित रूप से उसी के ऊपर गिरेगा और उसे अपनी पराजय के कड़वे परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

"...चीन सरकार और चीन की जनता पाकिस्तान सरकार और पाकिस्तान की जनता के अपनी राजकीय प्रभुसत्ता तथा क्षेत्रीय अखण्डता की प्रतिरक्षा तथा विदेशी आक्रमण और हस्तक्षेप के विरुद्ध किये जाने वाले न्यायेचित संघर्ष का दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है। वह राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए काश्मीर की जनता के न्यायोचित संघर्ष का भी दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है।"

२९ नवम्बर, १९७२ को संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा में बंगलादेश के प्रवेश पर हुई बहस में चीन के स्थायी प्रतिनिधि के भाषण के कुछ अंश

"...भारत और पाकिस्तान तथा पाकिस्तान और "बंगलादेश" की समस्याओं के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा के प्रस्तावों को जब तक पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जाता तब तक "बंगलादेश" राष्ट्रसंघ की सदस्यता का हकदार नहीं होता।

"...जैसाकि आप सभी को स्मरण होगा, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने [ि]छले वर्ष ७ दिसम्बर को अपने २६वें अधिवेशन की पूर्ण बैठक में १०४ मतों के भारी बहुमत से अल्जीरिया, अर्जेन्तीना तथा ३२ अन्य देशों का एक प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसमें यह मांग की गई थी कि युद्धबन्दी करके दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप से सेनायें वापिस हटा ली जांय। इसके बाद सुरक्षा परिषद् ने १२ मतों के भारी बहुमत से एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सभी सम्बन्धित पक्षों से युद्धबन्दी करने तथा शीघ्रातिशीघ्र जम्मू और काश्मीर सहित सभी विवादग्रस्त क्षेत्रों से सेनायें हटाने की मांग की गई थी और यह कहा गया था कि सभी सम्बन्धित पक्ष १९४९ के जेनेवा समझौते के अनुसार युद्धबन्दियों को

रिहा करके उन्हें वापिस जाने की अनुमति दें। इस प्रस्ताव में "सभी सम्बन्धित पक्षों" में "बंगलादेश" भी शामिल है जिसने अब संयुक्त राष्ट्र-संघ की सदस्यता के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है। अतएव उपरोक्त दो प्रस्ताव अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हैं जिनका "बंगलादेश" से सीधा सम्बन्ध है। उक्त दो महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों की उपेक्षा कर "बंगलादेश" के आवेदन-पत्र पर कदापि विचार नहीं किया जा सकता।

"इन दो प्रस्तावों को स्वीकार किये हुए लगभग १ वर्ष का समय बीत चुका है लेकिन भारत सरकार ने अभी तक अपनी सेनायें वापिस नहीं हटायीं हैं। इतना ही नहीं, भारत सरकार "बंगलादेश" के अधिकारियों के साथ मिल कर ९०,००० पाकिस्तानी युद्धबन्दियों और नागरिकों को अपने यहां रखे हुए है और उन्हें रिहा करने तथा उनके वापिस लौटने की अनुमति देने से इन्कार कर रही है। "बंगलादेश" के अधिकारी पाकिस्तानी युद्धबन्दियों पर मुकदमा चलाने की जिद भी कर रहे हैं। उन्होंने पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री भुट्टो के दोनों पक्षों के बीच बिना शर्त बातचीत के भी सभी न्यायसंगत प्रस्ताव ठुकरा दिये हैं। चूंकि "बंगलादेश" के अधिकारियों ने अपने पृष्ठपोषकों के उकसावे में महासभा और सुरक्षा परिषद के महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों को नजरन्दाज़ किया है इसलिए इस बात की क्या गारन्टी है कि वे राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र को मानने और उस पर अमल करने के लिए तैयार हैं। कैसे यह कहा जा सकता है कि वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के योग्य हैं?

"...उनके (बंगलादेश) इन निरंकुशतापूर्ण कार्यों ने अनेक प्रतिनिधि मंडलों में असन्तोष उत्पन्न किया है और चीनी प्रतिनिधिमंडल को निषेधाधिकार का प्रयोग करने के लिए मजबूर किया है।

"...सोवियत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र महासभा और सुरक्षा परिषद के प्रस्तावों को लागू करने से रोकने में भारत सरकार और

"बंगलादेश" के अधिकारियों को प्रोत्साहन देने की भरसक कोशिश की है और पाकिस्तान तथा "बंगलादेश" के बीच वास्तविक समझौते के मार्ग में सभी सम्भव बाधायें उपस्थित की हैं। इसके विपरीत उसने राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों के लागू होने से पहले ही "बंगलादेश" को राष्ट्र-संघ में प्रवेश दिलाने की मांग की है। निस्सन्देह ही सोवियत सरकार का उद्देश्य दक्षिण-पूर्वी उपमहाद्वीप में तनाव बढ़ाना और भ्रम उत्पन्न करना है ताकि वह उससे फायदा उठा सके और दक्षिण-एशियाई उपमहाद्वीप एवं हिन्द महासागर में अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर सके। अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि सोवियत सरकार की दिलचस्पी इस बात में नहीं है कि "बंगलादेश" को राष्ट्रसंघ में प्रवेश मिलता है या नहीं बल्कि इस सवाल को वह राजनीतिक ब्लैकमेल के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहा है।

"अब चूंकि संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन गणराज्य को अपने वैधानिक अधिकार प्राप्त हो चुके हैं इसलिए हमारा यह पावन कर्तव्य है कि विभिन्न राष्ट्रों के न्यायोचित लक्ष्य की रक्षा के लिए, सभी देशों की राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रभुसत्ता की सुरक्षा के लिए, विश्व शान्ति की रक्षा के लिए, हम सभी शान्तिप्रिय और न्यायप्रेमी देशों तथा जनगण का साथ दें और शक्तिवादी राजनीति तथा अधिनायकत्व के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना मोहरा बनाने के कुछ लोगों के प्रयासों का दृढ़तापूर्वक विरोध करें। सिद्धान्तों की रक्षा करना और न्याय तथा तर्क का समर्थन करना नये चीन का धर्म है।

"चीन पूर्वी बंगाल की जनता की मैत्रीपूर्ण भावनाओं का सदैव आदर करता रहा है। हमें आशा है कि "बंगलादेश" के अधिकारी स्वतन्त्र रूप से निर्णय करके शीघ्र ही पाकिस्तानी नेताओं से बातचीत करेंगे ताकि पाकिस्तान और "बंगलादेश" की समस्याओं का उचित समाधान हो सके। और इस प्रकार वे इस बात का सबूत दें कि

"बंगलादेश" सचमुच ही एक स्वाधीन राज्य है।"

इतिहास ने यह साबित कर दिया है कि चीनी माओपंथियों की भविष्य वाणियां कितनी गलत साबित हुई हैं।

वे बंगलादेश के गणमान्य नेताओं को कठपुतली कहकर पुकारते हैं। परन्तु शेख मुजीबुर्रहमान का जातीय संसद के लिए निर्विरोध चुना जाना इस बात का सबूत है कि आगामी चुनावों के क्या परिणाम निकलने वाले हैं।

चीनी नेता यह दावा करते थे कि बंगलादेश के शरणार्थी भारत से वापिस नहीं लौटेंगे। परन्तु एक-एक शरणार्थी वापिस जा चुका है। उनकी यह भविष्यवाणी भी झूठी साबित हुई है कि शेख मुजीबुर्रहमान विघटनकारी हैं, और उनकी अन्तिम पराजय निश्चित है। भारतीय सेनाओं का इस संघर्ष में सक्रिय सहयोग दूसरे देश के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप था या वह बन्धुत्वपूर्ण सहायता थी, इस पर अब टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

पाकिस्तानी सैनिक सत्ताधारियों ने साम्राज्यवादियों का विरोध कब किया था और वे कौन सी "साम्राज्यविरोधी परम्परायें" हैं, इसे केवल चीनी नेता जानते हैं। वास्तव में पाकिस्तानी शासकों के साथ चीनी नेता भी डालर की गोद में बैठ गये हैं और इसे ही वे व्यंग में साम्राज्यविरोध की संज्ञा देते हैं।

भारत की जनता और बंगलादेश ने तो मुंह की नहीं खाई। चीनी नेताओं और साम्राज्यवादियों ने मुंह की जरूर खाई है।

भारत ने पाकिस्तान का विघटन नहीं किया बल्कि चीनी नेताओं ने ही उकसावे पैदा करके उसका विघटन किया है। चीनियों का यह दावा गलत साबित हुआ है कि पूर्वी पाकिस्तान की जनता विघटनवादियों का समर्थन नहीं करेगी। वे विघटनवादी नहीं बल्कि सच्चे जन-नेता हैं। इसी प्रकार, भारत को यह धमकी देना बेकार है कि "कि उसे अपनी करनी

का फल भुगतना होगा।" ६३ देशों ने बंगलादेश को मान्यता देकर यह भविष्यवाणी गलत साबित कर दी है कि "एशिया तथा सम्पूर्ण विश्व की जनता क्रोधित हो उठी है" तथा "न्यायप्रिय देशों की जनता इसका विरोध करेगी।"

यह अजीब सिद्धान्त है कि इजराइली हमलावरों के खिलाफ "फिलिस्तीनी देशभक्तों को सशस्त्र संघर्ष छेड़ने का न्यायोचित अधिकार" तो है परन्तु बंगालियों को चीनी नेता वह अधिकार देने को तैयार नहीं हैं। यह और भी अजीब तर्क है कि बंगलादेश की मुक्ति "भारतीयों की पराजय का प्रारंभ है।" और फिर हमें धमकी दी जाती है कि "भारतीयों को इसके कड़वे परिणाम भुगतने होंगे।"

आगे चल कर चीनी नेता इस धमकी को चरितार्थ करते हैं कि "काश्मीर की जनता के न्यायोचित संघर्ष का" वे "दृढ़ता पूर्वक समर्थन करते हैं।" अर्थात् "भारतीयो! तुमने बंगला देश की मुक्ति के आन्दोलन में सहयोग दिया है तो चीन काश्मीर में तुम्हारे खिलाफ युद्ध का वातावरण बनाएगा।"

और अन्त में चीनी नेता दावा करते हैं कि "अब चूंकि संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन गणराज्य को अपने वैधानिक अधिकार प्राप्त हो चुके हैं" "इसलिए उसका यह पावन कर्त्तव्य है" कि बंगलादेश को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश न करने दे और "निषेधाधिकार का प्रयोग" करे।

समझदार पाठकों के लिए इससे अधिक टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

o o o